जैनाचार्य ।

लेखक—

श्री. विद्यारत्न पं० मूलचंद्र जैन वत्सल साहित्यशास्त्री

दमोह ।

प्रकाशक—

मूलचंद किसनदास कापड़िया,

मालिक, दिगम्बर जैन पुस्तकालय–सूरत ।

प्रथमावृत्ति] वीर सं० २४७४ [प्रति १०००

"दिगम्बर जैन" मासिकपत्रके ४१वें वर्षके ग्राहकोंको

स्व० सेठ किसनदासजी कापड़िया

स्मारक ग्रन्थमालाकी ओरसे भेंट ।

मूल्य रु० १–१०–०.

स्व० सेठ किसनदास पूनमचन्दजी कापड़िया–
स्मारक ग्रन्थमाला नं० ६।

हमने अपने पूज्य पिताजीके स्मरणार्थ वीर सं० २४६० में २०००) इस हेतुसे निकाले थे कि इसकी आयसे एक स्थायी ग्रन्थमाला प्रकट हो व जिसके ग्रन्थ विना मूल्य प्रचारमें आ सके।

अतः इस ग्रन्थमाला द्वारा आज तक निम्न ग्रन्थ प्रकट करके 'दिगम्बर जैन' मासिकपत्रके ग्राहकोंको भेटमें दिये जाचुके हैं।

१–पतितोद्धारक जैन धर्म ... ... १।)

२–संक्षिप्त जैन इतिहास तृ० भाग द्वि० खंड ... १)

३–पंच स्तोत्र संग्रह सटीक ... ... ।।=)

४–भगवान कुंदकुंदाचार्य ... ... ।।)

५–संक्षिप्त जैन इतिहास तृ० भाग चतुर्थ खंड ... १।)

और यह छठा ग्रन्थ 'जैनाचार्य' प्रकट किया जाता है जो 'दिगम्बर जैन' पत्रके ४१वें वर्षके ग्राहकोंको हमारे पिताजीके स्मरणार्थ भेट देते हैं।

यदि ऐसी ही अनेक स्मारक ग्रन्थमालायें दि० जैन समाजमें स्थापित होकर उनके द्वारा विना मूल्य या अल्प मूल्यमें नवीन अप्रकट जैन ग्रन्थोंका प्रचार होता रहे तो जैन साहित्यका अधिकाधिक प्रचार सुलभतया हो सकेगा।

—मूलचंद किसनदास कापड़िया–सूरत।

निवेदन।

इस ग्रन्थका नाम 'जैनाचार्य' इसलिये रखा गया है कि इसमें दिगम्बर जैन संपदायमें होनेवाले बड़े २ जैनाचार्यों, जिनने अनेक महान ग्रंथोंका संस्कृत, प्राकृत व अपभ्रंश भाषाओंमें रचना करके दि० जैन सिद्धान्तकी कीर्ति उज्वल की है तथा जिनका ऐतिहासिक परिचय भी इस रूपमें दिया गया है कि जो सर्वसाधारण जैन अजैन जनताको तथा विद्यार्थियोंको सहज ही समझमें आ सके तथा धार्मिक पठनक्रममें भी यह ग्रंथ रखा जा सके।

दि० जैनोंके गत ५० वर्षोंके इतिहासमें इस दिशामें यदि सबसे प्रथम किसी विद्वानने खोज व संशोधनका कार्य किया है तो वे श्री. पं० नाथूरामजी प्रेमी ही प्रथम विद्वान हैं जिनका दि० जैन समाज जितना भी उपकार माने कम है। आपने अपने 'जैन हितैषी' मासिकमें विद्वद्रत्नमाला नामक लेखमाला प्रकट की थी, जिसमें ६ जैनाचार्योंका विस्तृत परिचय प्रकट किया था, जो अलग ग्रन्थरूपमें भी प्रकट हुआ था। उसके बाद जैन हितैषी, जैन सिद्धांत भास्कर, माणिकचंद ग्रंथमाला, अनेकांत आदि साहित्यिक पत्रोंमें और भी जैन आचार्योंका परिचय प्रगट होता रहा था, जिस परसे महान खोज व परिश्रम करके प्रेमीजीने करीब ६ वर्ष हुए "जैन साहित्य और इतिहास" नामक बड़ा ग्रंथ प्रकट किया है जिसमें करीब ४०

जैनाचार्योंका परिचय व उनके रचे हुए ग्रंथोंका इतिहास है। ६५० पृष्ठोंका यह ग्रंथ सिर्फ ३॥) में मिलता है वह भी खतम होनेको है। इसलिये ही संक्षिप्त रूपमें जैनाचार्योंका जीवन परिचय करानेवाले एक ग्रन्थकी आवश्यकता थी जिसकी पूर्ति इस ग्रंथसे हो रही है। जिसमें २८ जैनाचार्योंका ऐतिहासिक परिचय है।

इसका संपादन जैन इतिहास-प्रेमी व अन्वेषक श्री० पं० मूलचंदजी जैन वत्सल दमोहने किया और हमको लिखा कि यदि आप अपनी ओरसे इसे दि० जैन पुस्तकालय सूरत द्वारा प्रकाशित करें तो जैन समाजका बड़ा भारी उपकार होगा क्योंकि आप द्वारा इसका विशेष प्रचार हो सकेगा। हमने आपकी इस सूचनाको स्वीकार किया और आज यह ग्रन्थ छपकर प्रकट होरहा है।

इस ग्रन्थका विशेष प्रचार हो इसलिये इसे 'दिगम्बर जैन' मासिक पत्रके ४१ वें वर्षके ग्राहकोंको हमने भेंटमें दिया है तथा शेष प्रतियां विक्रयार्थ भी निकाली हैं जो विद्यार्थियों व जैन इतिहासके अभ्यासियोंके लिये तो बड़े कामकी चीज है। आशा है इस ग्रन्थके प्रकाशनसे दि० जैन समाजमें जैन इतिहासके एक अंगकी पूर्ति अवश्य होगी।

निवेदक—

सूरत
वीर सं० २४७४
फाल्गुन सुदी १५
ता० २५-३-४८

मूलचन्द किसनदास कापड़िया
—प्रकाशक।

प्रस्तावना ।

संस्कृत साहित्य महासागरकी तरह अगाध है, इसमें प्रवेश करने पर उसकी महानता और गंभीरताका हमें कुछ परिज्ञान होता है।

आचार्यों और महर्षियोंके महान् तत्त्वज्ञान और विशाल मस्तिष्कका परिचय उनके साहित्य द्वारा प्राप्त होता है। उनके द्वारा रचित साहित्यकी ओर जब हम दृष्टिपात करते हैं तब उनकी तीक्ष्णबुद्धि, चमत्कारिणी प्रतिभा, अद्भुत कार्यक्षमता और काव्यकलाका महत्त्वपूर्ण चित्र हमारे सामने अङ्कित हो उठता है और हृदय आश्चर्यचकित हो जाता है। सूक्ष्म आत्मविज्ञान, आध्यात्मिक तत्त्वविवेचन, मनोमुग्धकारी सूक्तियें, विलक्षण तर्कणा, धारावाही शब्दराशि, और उपमा आदि अलंकारोंके दर्शन कर हम श्रद्धा, भक्ति और विनयसे नतमस्तक होजाते हैं।

जैनाचार्योंका साहित्य आत्मविवेचनकी महान सीमाके अतिरिक्त कर्मविज्ञान, धर्मतत्त्व, भौतिक विज्ञान और न्यायकी अत्यंत तर्कपूर्ण प्रौढ़ युक्तियोंके साथ परिवर्द्धित हुआ है। इन्होंने जिस दिशाको ग्रहण किया है उसे वर्णनकी चरमसीमा तक पहुंचा दिया है।

तत्त्वनिरूपणके दृष्टिबिंदुओंका निरूपण करते हुए अपनी अकाट्य युक्तियें और तर्कणाशक्तिका उन्हें गौरवपूर्ण परिचय दिया है। उनकी तर्ककी तीक्ष्ण किरणोंके सामने किसीका साहस नहीं होसका है। इस दिशामें अष्टशती, अष्ट सहस्री, न्यायकुमुद चंद्रोदय, प्रमेयकमलमार्तंड, न्यायदीपिका, परीक्षामुख, न्यायविनिश्चय आदि महान्

ग्रंथोंका निर्माण कर आचार्योंने जहां अपने न्यायशास्त्रके अगाध ज्ञानका परिचय दिया है, वहां द्विसंधान महाकाव्य, धर्मशर्माभ्युदय, यशस्तिलक, पार्श्वाभ्युदय, महापुराण आदि काव्यकलासे चमत्कृत गद्य-पद्यके उत्कृष्ट काव्य-ग्रंथोंकी रचना करके अपनी काव्यकलासे संसारको मुग्ध कर दिया है।

जहां आध्यात्मिक विवेचन करते हुए उन्होंने आत्मतत्वका सूक्ष्मातिसूक्ष्म निरूपण करके आत्मशक्तियोंको दर्पणकी तरह स्पष्ट कर दिया है वहां कर्म विज्ञानकी विवेचना करते हुवे, कर्म तथा पुद्गलकी सूक्ष्म अणुशक्तियोंका वर्णन करके अपने अद्भुत ज्ञानका परिचय दिया है। मानवकी उद्दाम प्रकृतिको सदाचार और धार्मिक नियमोंमें संबद्ध रखनेके लिए आचार ग्रंथोंकी विस्तृत विवेचना की गई है। इसके अतिरिक्त लोकविभाग, नीतिशास्त्र, ज्योतिष, वैद्यक, आदि सभी दिशाओंमें पर्याप्त साहित्य सृजन करके अपने अपूर्व श्रुतज्ञानका परिचय दिया है। उनके ये ग्रन्थ संसारके किसी भी साहित्यके साम्हने अपना मस्तक ऊंचा रखनेके लिए पर्याप्त हैं।

विक्रमकी प्रथम शताब्दीके प्रारम्भसे महान् आचार्यों और विद्वानोंने जिस युगांतरकारी महान् साहित्यकी रचना की है वह मनोमुग्धकर है।

वे पूज्य आचार्य आज हमारे साम्हने नहीं हैं जिन्होंने अपने जीवनके अमृत रससे साहित्योद्यानका सिंचन किया है। अपनी आत्मसाधनाके अमूल्य समयको जिन्होंने शारदाका भंडार भरनेके लिए न्योछावर कर दिया है। वे कल्याण—पथके पथिक हुए, किन्तु उन्होंने

जो महान् उपकार किया है उसे विस्मृत कर देना हमारे लिए एक महान् अपराध ही नहीं किन्तु घोर कृतघ्नता होगी।

हमने अपने साहित्यके महत्वको अभीतक नहीं समझा है। वास्तवमें साहित्य वह प्रकाश है जिसके बिना हमारा पथ प्रदर्शित नहीं हो सकता।

साहित्य द्वारा ही हमें अपने पूर्व पुरुषोंका गौरव, धर्म और संस्कृतिके दर्शन होते हैं। हमारी महानता व हमारे महान व्यक्तियोंका गौरव साहित्यके अंतस्तलमें ही छुपा रहता है। संक्षेपतः साहित्य ही हमारी संस्कृति और जीवन है।

पूर्वाचार्योंने अपने पूर्ववर्ती आचार्योंकी मुक्तकंठसे प्रशंसा की है। उन्होंने ज्ञानके महत्वको समझाया, ज्ञानकी पूज्यताका उन्होंने आदर किया था, और अपनी श्रुतभक्ति, गुणग्रहणता और हृदयकी विशालताका परिचय दिया था। इन महान् आचार्योंने अपने पूज्य आचार्योंकी विद्वत्ताका निःसंकोच रूपसे गुणगान किया है। उन्होंने अपने गुरुओंके साम्हने नम्र होकर अपनी महानताको प्रदर्शित किया है।

आज हममेंसे कृतज्ञताका भाव लुप्त होगया है, हम अपने साहित्यके गौरवको विस्मृत करते जाते हैं। हममेंसे साहित्यके प्रति श्रद्धा और उदारताकी भावना नष्ट होती जाती है यही कारण है कि संसारको प्रकाश देनेवाला हमारा साहित्य प्रकाशमें नहीं आ सका। हम स्वयं उसके प्रकाशको नहीं देख पाते। हम स्वयं उसके महत्वका संरक्षण नहीं कर सकते फिर संसारके साम्हने हम उसके महत्वका क्या प्रदर्शन करेंगे?

हमारे विद्यालयोंमें ग्रंथ अध्ययन कराये जाते हैं। परीक्षाबोर्ड उनकी परीक्षाएं लेते हैं। ग्रंथ अवश्य पढ़ाये जाते हैं किन्तु ग्रंथकारोंके जीवन परिचयसे सभी अज्ञात रहते हैं। जिनके ज्ञानकी किंचित् किरणोंके प्रकाशसे हम अपनेको चमकाते हैं जो हमारे लिए महान् प्रकाशस्तंभ हैं, जिनका आदर्श हमारे जीवन निर्माणके लिए प्रधान साधन होता है, उनके जीवन रहस्यको जानकर उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलियां अर्पित करना हम भूल जाते हैं।

आज हम उन पुण्यमूर्ति आचार्यों और धर्म-प्रचारकोंके जीवनचरित्रोंसे अपरिचित हैं। जिन्होंने हमारे कल्याणके लिए, हमारी धर्म रक्षाके लिए अपना जीवन बलिदान किया है, हममें ज्ञानकी अहंमन्यताकी भावना बढ़ती जाती है और महानता तथा उदारताके भाव नष्ट होते जाते हैं। ज्ञानवानोंकी यह उपेक्षित मनोवृत्ति असह्य होनेके साथ २ प्राचीन ज्ञानको उत्कृष्ट दिशामें पहुंचानेके लिए अत्यन्त बाधक भी है।

जैन समाजमें जन गणनाकी दृष्टिसे पदवीधारी विद्वानोंकी संख्या अत्यधिक है, किन्तु कार्य दृष्टिसे जब हम इस दिशाकी ओर दृष्टिपात करते हैं तब हृदय एक गहरी तड़पनसे कराह उठता है। जिस समाजमें अनेकों आचार्य और तीर्थ जैसे उपाधि धारकोंकी इतनी संख्या हो उसका साहित्यक गौरव कुछ भी न हो यह किसके हृदयको विदीर्ण नहीं कर देगा?

आज हमारी विद्वत् समाजमें पूर्वाचार्योंकी तरह मूक साहित्यसेवियोंका अभाव है यही कारण है कि हम मौलिक और महत्त्वशाली साहित्यका अब तक कुछ निर्माण नहीं कर सके, और न अपने

साहित्यको ही सुन्दर और सर्वजनोपयोगी रूप दे सके। कुछ साहित्य-सेवी निस्पृही स्वतन्त्र विद्वानोंको छोड़ कर अधिकांश विद्वान् समाजकी दलदल और साधारण स्वार्थ भावनाओंको पूर्ण करनेमें ही लगे हुए हैं। साहित्यके प्रति अपने महान् उत्तरदायित्वकी ओर उनका कुछ भी लक्ष्य नहीं है। साहित्यके नाते पत्र-पत्रिकाओंमें जो कुछ लिखा जाता है वह केवल अपने नामका प्रदर्शन मात्र होता है।

यही नहीं कि हमारे यहां कुछ सजगता नहीं हो रही है। जैन समाजके माने हुए विद्वान् पं० नाथूरामजी प्रेमी, पं० जुगलकिशोरजी मुख्तार, प्रो० हीरालालजी एम० ए०, बाबू कामताप्रसादजी, पंडित भुजबलि शास्त्री, पं० महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्य, पं० दरबारीलालजी न्यायाचार्य तथा पं० परमानंदजी शास्त्री आदि विद्वान इस दिशामें सतत प्रयत्नशील हैं।

जैन सिद्धान्त भवन आरा, वीर सेवा मंदिर सरसावा, भारतीय ज्ञानपीठ बनारस और माणिकचन्द्र ग्रंथमाला जैसी संस्थायें जैनाचार्यकी कीर्ति उज्ज्वल करनेका प्रयत्न कर रही हैं किन्तु जितना कार्य इस दिशामें होना चाहिये वह नहीं हो रहा है।

जैन साहित्यके द्विसंधान महाकाव्य, पार्श्वाभ्युदय, यशस्तिलक जैसे गौरवशाली और विद्वानोंकी प्रतिभाको चमत्कृत कर देनेवाले काव्य सुन्दर अनुवाद सहित अभी तक हिन्दी जनताके सामने नहीं आ सके। यही क्यों अनेकों नाटकों और गद्य काव्य ग्रन्थोंमेंसे एकका भी सुंदर, सरस और सर्व जनोपयोगी संस्करण प्रकाशित नहीं हो सका। यदि आज उनका सुंदर और सामयिक प्रकाशन होता, वह

विद्वानोंकी दृष्टिमें आते उनकी समालोचनायें होतीं तो जैन साहित्य सूर्यके प्रकाशकी तरह जगमगा उठता, और जैन जीवन प्रकाशमें आता। मैं साहित्यका एक तुच्छ पुजारी हूं साहित्य सेवाके नाते मेरा यह एक तुच्छ प्रणाम है, साहित्यके महत्वके गीत गानेमें मुझे हर्ष होता है, उसके दर्शनकर हृदय मुग्ध होता है, उसकी महान् भावनायें हृदयमें अलौकिक आभा प्रदान करती हैं यह तुच्छ सेवा उसका प्रतिफल है।

विक्रमकी प्रथम शताब्दिके प्रारंभसे महान् आचार्योंने जो साहित्य सेवायें की हैं उनका संक्षिप्त परिचय ही इस छोटेसे निबन्ध द्वारा कराया गया है। क्योंकि इस पुस्तकका निर्माण विद्यालयोंके छात्रोंको परीक्षामें आने वाले ग्रंथों तथा उनके निर्माताओंका परिज्ञान करानेकी दृष्टिसे किया गया है इसलिए इसमें अनेक आचार्योंका जीवन परिचय हम नहीं दे सके।

राज्यक्रांति तथा सामाजिक विद्वेष्यपूर्ण संघर्षोंमें तथा समाजकी असावधानीसे कितना साहित्य विस्मृतिके गर्भमें विलीन होचुका है यह नहीं कहा जासकता। उसके कुछ बचे हुए साहित्यका पूर्ण परिचय भी अप्राप्य होनेके कारण हम नहीं दे सके। केवल संस्कृत और प्राकृतके आचार्योंका चरित तथा साहित्य परिचय ही हम अंकित कर सके हैं। इसके अतिरिक्त जैनाचार्योंने जो कनड़ी, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषामें जनमुग्धकारी महान् साहित्यका निर्माण किया है उसका कुछ परिचय नहीं दे सके।

इस पुस्तकके लिखनेमें सुहृदवर पं० नाथूरामजी प्रेमीके 'जैन इतिहास और साहित्य' ग्रंथसे पूर्ण सहायता ली गई है। इतना

ही नहीं किन्तु उसके अनेक उद्धरण इसमें ज्योंके त्यों रख दिये गये हैं। यदि यह ग्रन्थ नहीं होता तो इस पुस्तकका प्रकाशमें आना ही असंभव था। इसके लिए मैं प्रेमीजीका अत्यंत कृतज्ञ हूं।

" जैन सिद्धान्त भास्कर " और " अनेकान्त " में प्रकाशित होनेवाले विद्वानोंके लेखों तथा जिन विद्वानोंके ग्रंथोंकी भूमिकाओंसे इसमें सहायता मिली है मैं उन सबका आभारी हूं।

आचार्योंके प्रति साधारण कृतज्ञता ज्ञापन करनेके इस कार्यका श्रेय पं० पन्नालालजी साहित्याचार्यके साहित्यिक स्नेहको मिलना चाहिए जिन्होंने इस पुस्तकके लिखनेकी ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया और यह लिखी जा सकी।

मेरे अत्यन्त स्नेह बन्धु और वीर सेवा मंदिरके सुयोग्य विद्वान् पं० परमानंदजीने अपने अवकाशके अमूल्य समयको निकालकर इस ग्रन्थके कुछ अंशका संशोधन करने तथा अपनी अमूल्य सम्मतियें प्रदान करनेकी जो उदारता प्रकट की है इसके लिए वे धन्यवादके पात्र हैं।

प्रथम प्रयास अपूर्ण और त्रुटियोंसे भरा होता है किन्तु वह भविष्यके लिए उन्नत दिशाका प्रदर्शक होता है उससे आगेका कार्य पथ प्रशस्त बनता है और उन्नतिका सृजन होता है, इस दृष्टिसे पूर्ण सन्तोष रखते हुए आशा रखता हूं कि इसके द्वारा विद्वानोंका ध्यान आकर्षित होगा और वे इससे अधिक सुन्दर और बृहत् ग्रन्थका निर्माण कर आचार्योंके गौरवको प्रदर्शित करेंगे।

साहित्यरत्नालय
दमोह। } साहित्य-सेवक
मूलचन्द ' वत्सल। '

विषय-सूची।

ग्रन्थ परिचय-सूची।

जैनाचार्य ।

आचार्य-परंपरा ।

जैन श्रुतका उद्गम लोककल्याणकी पवित्र भावनाको लेकर हुआ है। मानवके अन्दर गुप्तरूपसे छिपी हुई महान् शक्तिको ध्वनित करने और उसके विकासको चरम सीमा तक पहुंचा देनेके महान् आदर्श उसके अन्तस्तलमें निहित हैं। मानव कल्याणके अतिरिक्त समाजविज्ञान संबंधी संपूर्ण अङ्गोंका भी उसमें सुस्पष्ट विवेचन किया गया है।

आत्मविज्ञानकी विस्तृत विवेचना करते हुए आत्मशक्ति विकसित करने, उसके विकासको चरम-सीमा तक पहुंचा देने और आत्मशक्तिको वर्द्धित करनेके संपूर्ण साधनोंका तलस्पर्शी विवेचन जैनश्रुतमें विस्तृत रूपसे किया गया है।

आत्मविज्ञानसे सहयोग रखनेवाले प्रत्येक अंगकी परिपुष्टिके

लिए सदाचारके नियमोंका सुन्दर निरूपण, महापुरुषोंका आदर्श जीवन परिचय, कर्म विज्ञान और भौतिक विज्ञानका सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन किया गया है ।

इस संपूर्ण विवेचनको जैन पारिभाषिक शब्दोंमें 'द्वादशांग' वाणीके नामसे संबोधित किया गया है, जिसका उद्गम भगवान् महावीरकी दिव्यध्वनि द्वारा हुआ है । भगवान् महावीरके उपदेश द्वारा जिस श्रुतधाराकी अवतारणा हुई उसे उनके समवसरणके प्रधानवक्ता गणाधीश इन्द्रभूति (गौतम)ने 'द्वादशांग' के रूपमें संकलित किया ।

महावीरस्वामीके निर्वाणके पश्चात् इन्द्रभूतिने पूर्ण कैवल्य प्राप्त किया और अपने शिष्य-समूहको संपूर्ण श्रुतज्ञानका उपदेश दिया, और उन्होंने अपने शेष जीवनके बारह वर्ष इस श्रुतज्ञानके प्रचारमें समाप्त किए । महात्मा इन्द्रभूतिसे संपूर्ण श्रुतज्ञानको प्राप्त कर उनके प्रधान शिष्य सुधर्माचार्यने जंबूस्वामीको अध्ययन कराया, और कैवल्य प्राप्त कर बारह वर्ष तक वे ज्ञानका प्रचार करते रहे । महात्मा सुधर्माचार्यके पश्चात् जंबूस्वामीने कैवल्य प्राप्त कर अपने संघके समस्त साधुओंको श्रुतज्ञानका बोध कराया । उन्होंने ३८ वर्ष तक विहार करते हुए धर्मोपदेश दिया । इस तरह भगवान् महावीरके निर्वाणके पश्चात् ६२ वर्ष तक गौतमस्वामी, सुधर्माचार्य और जंबूस्वामी इन तीन कैवल्य प्राप्त महात्माओंने संपूर्ण श्रुतज्ञानका अबाधित रूपसे प्रचार किया ।

जंबूस्वामीके निर्वाण प्राप्त होनेपर श्री विष्णुमुनि, नंदिमित्र, अपराजित, गोवर्द्धन और भद्रबाहु ये पांच महासाधु संपूर्ण श्रुतसमूहके पारगामी, द्वादशांगके पाठ करनेवाले श्रुतकेवली हुए । अशेष ज्ञानधारी

इन पांचों महामुनियोंने एकसौ वर्षतक धर्मोपदेश दिया। भद्रबाहुके पश्चात् संपूर्ण श्रुतज्ञानके पाठ्यकर्ताओंका अभावसा होगया, पूर्ण श्रुतज्ञानरूपी सूर्य अस्ताचलमें विलीन होगया !

भद्रबाहुस्वामीके निधन होनेपर विशाखदत्त, प्रौष्ठिल, क्षत्रिय, जयसेन, नागसेन, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजयसेन, बुद्धिमान, गंगदेव और धर्मसेन यह ग्यारह महात्मा ग्यारह अंग और दश पूर्वके धारक और शेष चार पूर्वोंके एकदेश धारक हुए। इन्होंने १८३ वर्ष तक अविच्छिन्न रूपसे ११ अंग रूप श्रुतज्ञानका पठन पाठन किया।

महामना धर्मसेनके पश्चात् नक्षत्र, जयपाल, पांडु द्रुमसेन और कंसाचार्य इन पांच महात्माओंने (१२३ वर्ष) और इस तरह २२० वर्ष तक ग्यारह अंगके अध्ययनको स्थिर रक्खा।

महा विद्वान् कंसाचार्यके बाद सुभद्र, अभयभद्र, जयबाहु और लोहाचार्य ये पांच महामुनीश्वर आचारांग शास्त्रके महाविद्वान हुए, इन्होंने ११८ वर्ष तक अंगज्ञानको सुरक्षित रक्खा।

इसतरह वीर निर्वाणके ६८३ वर्ष तक लोहाचार्य पर्यंत अट्ठाइस आचार्य हुए, जिन्होंने अंग ज्ञान तक जैन श्रुतका अभ्यास किया। लोहाचार्यके बाद अंगज्ञानका पठन पाठन समाप्त होगया।

लोहाचार्यके पश्चात् विनयंधर, श्रीदत्त, शिवदत्त और अर्हद्दत्त ये चार आरातीय मुनि अंगपूर्व–ज्ञानके कुछ भागके विज्ञाता हुए।

इस समय तकके सभी विद्वान् आचार्य भगवान् महावीरके प्रधान संघ मूलसंघके अन्तर्गत रहे।

संघ-परंपरा ।

उपरोक्त आचार्योंके कार्यकालके पश्चात् पुंड्रवर्द्धनपुरमें श्री अर्हद्बलि नामक महामुनि अवतीर्ण हुए, जो अंगपूर्वदेशके एक भागके ज्ञाता थे । ये महान आचार्य अष्टांग महानिमित्तके ज्ञाता और मुनि-संघका निग्रह, अनुग्रह पूर्वक करनेमें पूर्ण समर्थ थे ।

महा विद्वान् अर्हद्बलि प्रत्येक पांच वर्षके अन्तमें सौ योजनक्षेत्रमें निवास करनेवाले मुनियोंके समूहको एकत्रित करके युग प्रतिक्रमण कराते थे । एकवार आचार्य अर्हद्बलिने युग प्रतिक्रमणके समय आते हुए मुनिसमूहसे पूछा—'सर्व यति आगये ?' इसके उत्तरमें उन मुनियोंने कहा—'भगवन्! हम सब अपने २ संघ सहित आगये' इस उत्तरमें अपने २ संघके प्रति मुनियोंकी निजत्व भावना प्रकट होती थी, इसलिए आचार्य महोदयने यह शीघ्र ही निश्चय कर लिया कि इस कलिकालमें अब आगेका साधुसमूह एक संघके बंधनमें स्थिर नहीं रह सकेगा । उनमें धर्मके भिन्न २ गणोंके पक्षपातसे आगेके मुनिसंघ, गण और गच्छका पक्ष ग्रहण करेंगे, इसप्रकार विचार कर आपने चार संघोंकी स्थापना की । जो साधु गुफासे आए हुए थे उन्हें नंदि, अशोकवनसे आनेवालोंको देव, पंचकुटीसे आनेवाले मुनियोंको सेन और खंडकेसरिवृक्षके नीचेसे आनेवाले साधुगणोंको भद्र नामसे संबोधित किया ।

महावीर भगवान्के निर्वाणके पश्चात् जबतक श्वेतांबर संप्रदायकी उत्पत्ति नहीं हुई थी तबतक जैनाचार्य संघभेदसे रहित थे। उस समय

जैन शासन केवल अर्हत, जैन और अनेकांत नामसे प्रसिद्ध था। श्वेतांबरोंकी उत्पत्तिके बादसे दिगम्बर संप्रदाय मूलसंघके नामसे प्रचलित हुआ।

आचार्य अर्हद्बलिके समयसे आगे चलकर वह चार संघों रूपमें परिगणित होगया। इन संघोंमें भी बलात्कार, पुन्नाट, देशीय, काणूर आदिगण तथा सरस्वती, पारिजात पुस्तक आदि गच्छ स्थापित हुए।

दिगम्बर श्वेतांबर भेदोत्पत्तिके ६०–७० वर्ष बाद यापनीय संघकी उत्पत्ति हुई। यह संघ दोनों संप्रदायोंके अतिरिक्त एक तीसरा संप्रदाय था। यह संप्रदाय कर्नाटक और उसके आसपास बहुत प्रभावशाली रहा। सुप्रसिद्ध व्याकरणके कर्ता शाकटायन इसी संघके आचार्य थे। विक्रमकी पन्द्रहवीं शताब्दि तक यह संघ जीवित था। यापनीय संघकी प्रतिमाएं वस्त्र रहित होती थीं, यह संघ सूत्र या आगम ग्रंथोंको भी मानता था। यापनीय संघका बहुतसा साहित्य दिगंबर साहित्य जैसा ही प्रतीत होता है। यापनीय संघके मुनि नग्न रहते थे, मोरकी पिच्छि रखते थे, पाणितलभोजी थे, दिगंबर मूर्ति पूजते थे और वंदना करनेवाले श्रावकोंको धर्मलाभ देते थे, साथ ही वे स्त्रियोंको तद्भव मोक्ष होना भी मानते थे।

काष्ठासंघकी उत्पत्ति आचार्य जिनसेनके सतीर्थ वीरसेनके शिष्य कुमारसेन द्वारा विक्रम सं० ७५३ में हुई। यह आचार्य नन्दितटमें रहते थे। उन्होंने कर्कशकेश अर्थात् गायकी पूंछकी पिच्छि ग्रहण करके सारे बागड़प्रान्तमें उसका प्रचार किया, और मयूरपिच्छिकाका विरोध किया। आगे चलकर यह काष्ठासंघके नामसे प्रचलित हुआ।

काष्ठासंघकी उत्पत्तिके २०० वर्ष बाद वि० सं० ९५३ के लगभग मथुरामें माथुरोंके गुरु आचार्य रामसेनने निःपिच्छिक रहनेका उपदेश दिया। उन्होंने उपदेश दिया कि मुनियोंको न तो मयूरपिच्छि रखनेकी जरूरत है और न गोपुच्छकी पिच्छि। आगे चलकर यह माथुर संघके नामसे प्रसिद्ध हुआ जो काष्ठासंघकी शाखारूप समझा जाता है।

काष्ठासंघमें नंदितट, माथुर, बागड़ और लाड़बागड़ ये चार प्रसिद्ध गच्छ हुए, ये नाम स्थानों और प्रदेशोंके नामोंपर रक्खे गये।

संघ, गण और गच्छ ये शब्द कहीं २ पर्यायवाचीके रूपमें व्यवहारमें लाए जाते हैं।

ग्रंथलेखनपद्धति और श्रुतज्ञानकी स्थापना।

अर्हद्बलि मुनिराजके बाद माघनंदि नामक महामुनि हुए जो अंगपूर्वदेशके प्रकाशक थे। उनके पश्चात् सुराष्ट्र (सौराष्ट्र, गुजरात, काठियावाड़) देशके गिरिनगरके समीप उर्जयंतगिरि (गिरनार) की चन्द्रगुफामें निवास करनेवाले महातपस्वी श्रीधरसेन आचार्य हुए जो अष्टांग महानिमित्तके पारगामी थे, और जिन्हें अग्रायणी पूर्वके अन्तर्गत पंचम वस्तुके चतुर्थ महाकर्म प्राभृतका ज्ञान था। आपको श्रुतज्ञानके उद्धारकी पूर्ण चिन्ता थी। आपने अपने निर्मल ज्ञान द्वारा भविष्यमें होनेवाले श्रुतज्ञानके अभाव पर विचार किया। उन्हें ज्ञात हुआ कि अब भविष्यमें धारणा शक्तिका अत्यंत अभाव हो जायगा। और यदि श्रुतज्ञानके संरक्षणका समुचित प्रयत्न नहीं किया गया तो

श्रुतज्ञानका पूर्णतः विच्छेद हो जाना संभव है। तब उन्होंने देवेन्द्र देशके वेणातटाकपुरमें निर्वासित महा महिमाशाली साधुओंके निकट एक संदेश भेजकर दो प्रज्ञावान साधुओंको अपने निकट भेजनेका आग्रह किया, जो तीक्ष्णबुद्धि और श्रुतज्ञानको ग्रहण और धारण करनेमें समर्थ हों। मुनियोंने दो बुद्धिशाली साधुओंका अन्वेषण शीघ्र ही भेज दिया उनके नाम पुष्पदंत और भूतबलि थे।

श्रीधरसेनाचार्यने उनकी परीक्षा लेकर इन्हें अत्यंत योग्य समझकर ग्रंथका व्याख्यान प्रारंभ किया; दोनों मुनि गुरुविनय और ज्ञानविनयके साथ २ अध्ययन करने लगे।

अधिक समयतक अध्ययनके पश्चात् आषाढ़ कृष्ण ११ को ग्रंथ समाप्त हुआ।

आचार्य श्रीधरसेनके निधनके पश्चात् आचार्य पुष्पदंत और भूतबलि दक्षिणकी ओर भ्रमण करते हुए करहाट नामक नगरमें पहुंचे।

आचार्य पुष्पदंत अपने भतीजे जिनपालितको अध्ययन करानेके लिए वहां ही ठहर गए, और आचार्य भूतबलिने द्रविड़देशके मथुरा नगरकी ओर विहार किया।

जिनपालितके अध्ययनके लिए श्री पुष्पदंताचार्यने धर्मप्राभृतका छह खंडोंमें उपसंहार करते हुए उसे ग्रंथरूपमें रचनेका संकल्प किया।

प्रथम जीवस्थानाधिकारकी रचना करते हुए उसमें गुणस्थान और जीव समासादि २० प्ररूपणाओंका वर्णन किया और उसके एकसौ सूत्र अपने शिष्यको कंठस्थ कराकर आचार्य भूतबलिके पास उनकी सम्मतिके लिए भेजा।

भूतवलिजीने उक्त सूत्रोंको सुनकर पुष्पदंत मुनिके षट्खंडरूप आगम रचनाका उद्देश्य समझा और उन्होंने प्रत्येक खंडोंमें पूर्व सूत्रों सहित छह हजार श्लोकोंमें द्रव्यप्ररूपणाधिकारकी रचना की, और उसके बाद ३० हजार श्लोकोंमें महाबंध नामक षष्ठम खण्डका निर्माण किया। प्रथम पांच खंडोंके सूत्रोंको उन्होंने जीवस्थान, क्षुल्लक बन्ध, बन्ध स्वामित्व, भाव वेदना और वर्गणाके नामसे विभाजित किया।

षट्खंडागमकी रचना करके उसके संरक्षणके लिए उन्होंने उसे ज्येष्ठ शुक्ला पंचमीको लिपिबद्ध किया। इसके पूर्व श्रुतज्ञानका अध्ययन केवल कंठस्थ ही होता था—उस समय लेखनप्रणालीका उपयोग नहीं होता था। जब लिपिबद्ध किया गया और उसे भक्ति और श्रद्धाके साथ वेष्टनसे बांधकर उसकी पूजा की गई और वह शुभ दिन श्रुतपंचमीके नामसे भारतवर्षमें विश्रुत हुआ।

भूतवलि आचार्यने षट्खंडागमके संपूर्ण अध्ययनमें निपुण बनाकर जिनपालित शिष्यको पूर्ण ग्रन्थके साथ श्री पुष्पदंतजीके निकट भेज दिया। आचार्य महोदय पूर्ण ग्रंथका निरीक्षण कर हर्ष-विभोर होगए और बड़ी भक्ति तथा श्रद्धाके साथ सिद्धांतग्रंथकी महापूजा की।

श्रीधरसेनाचार्यके समयवर्ती श्री गुणधराचार्य नामक एक महाविद्वान् हुए उन्होंने कषायप्राभृत नामक आगम ग्रंथका निर्माण किया। इसकी रचना १८३ मूल और ५३ विवरण रूप गाथाओंमें की। फिर इसे श्रीनागहस्ती और आर्यमंक्षु नामक मुनियोंके व्याख्यानके लिए १५ महाबंध अधिकारोंमें विवक्षित किया।

महामुनीश्वर नागहस्ती और आर्यमंक्षुके द्वारा प्रसिद्ध विद्वान् श्री यतिऋषभने दोषप्राभृतके सूत्रोंका अध्ययन कर ६ हजार श्लोकोंमें सूत्र रूप चूर्णिवृत्ति निर्माण की।

महामुनि यतिवृषभके पश्चात् उक्त सूत्रोंका अध्ययन कर श्री उच्चारणाचार्यने १२००० श्लोकोंमें उच्चारणवृत्ति निर्मित की। इस तरह श्रीगुणधराचार्य आचार्य, यतिवृषभ और उच्चारणाचार्यने कषाय प्राभृतका गाथा चूर्णि और उच्चारणवृत्तिमें उपसंहार किया।

कर्मप्राभृत और कषायप्राभृत सिद्धान्तोंका ग्रंथ रूपमें निर्माण होनेके पश्चात् श्रीपद्मपुनिको गुरु परम्पराके उक्त ग्रन्थोंकी कुण्डकुन्द-पुरमें प्राप्ति हुई, उन्होंने छह खंडोंमेंसे प्रथम तीन खंडोंकी १२ हजार श्लोकोंमें टीका निर्माण की।

श्री पद्ममुनिके कुछ समय पश्चात् श्री श्यामकुंड आचार्यने दोनों आगमोंको संपूर्णतया पढ़कर षष्ठ महाबंध खंडको छोड़कर शेष दोनों प्राभृतोंकी १२ हजार श्लोकोंमें टीका निर्माण की। इसके अतिरिक्त आचार्य महोदयने प्राकृत, संस्कृत और कर्णाटक भाषाका ग्रन्थ परिशिष्ट नामक उत्कृष्ट ग्रंथकी रचना की।

श्यामकुंड आचार्यके बाद तुम्बुलूर नामक ग्रामके तुम्बुलूर नामक आचार्यने षष्ठ महाबंधके अतिरिक्त शेष दोनों आगमोंकी कर्णाटकीय भाषामें ८४ हजार श्लोकोंमें चूडामणि नामकी व्याख्याकी रचना की, और षष्ठ खंडपर भी ७ हजार श्लोकोंमें प्रमाणपंजिका टीकाका निर्माण किया।

अब तकके महा-आचार्योंने अपने अपूर्व ज्ञानका परिचय देते

हुए आगम ग्रंथोंका निर्माण किया जिनके ऊपर आगे चलकर विद्वान आचार्योंने अनेक बृहत् टीकाओंकी रचना की । इसी समय महान् आचार्य कुन्दकुन्द स्वामीका उदय हुआ जिन्होंने प्राकृत भाषामें उच्च कोटीके आध्यात्मिक और आचार संबंधी ग्रंथोंका निर्माण किया । अबतककी प्रायः सभी रचनाएं प्राकृत भाषामें ही निबद्ध थी ।

ग्रंथलेखन पद्धतिके विस्तारके साथ २ प्रतिभाशाली आचार्योंने संस्कृतमें ग्रंथ निर्माण करना प्रारंभ किया। इसके मूल प्रवर्तक आचार्य उमास्वामी तथा आचार्य समंतभद्रस्वामी थे, जिन्होंने सिद्धान्त ग्रंथोंके अतिरिक्त आचार और भक्तिपूर्ण साहित्य काव्य पर अपनी प्रतिभापूर्ण लेखनी चलाकर उसे जीवन दिया ।

श्री समंतभद्रस्वामीके पश्चात् होनेवाले अनेक महा-विद्वान् आचार्यों तथा विद्वान् गृहस्थोंने संस्कृत साहित्यके संपूर्ण अंगोंको परिपुष्ट करते हुए चमत्कृत ग्रंथोंकी रचना की ।

विद्वत्ताके प्रकाशसे विश्वमें साहित्यकी अखंड ज्योति प्रकाशित करनेवाले उन्हीं आचार्योंका कुछ परिचय इस पुस्तकमें देनेका प्रयत्न किया गया है ।

श्रुतज्ञान विवरण।

संपूर्ण श्रुतज्ञान द्वादशाङ्ग रूपसे विभक्त है।

१ आचाराङ्ग–इसमें साधु धर्म, उसके अचल नियम तथा आचारका बिशद वर्णन है। इसमें १८ हजार पद हैं।

२ सूत्रकृताङ्ग इसमें सूत्र रूपसे ज्ञान, विनय, धर्मक्रिया आदिका संक्षिप्त वर्णन है। इसके ३६ हजार पद हैं।

३ स्थानाङ्ग–इसमें एक भेदको लेकर अनेक भेदोंकी व्याख्या है, यह ४२ हजार पदोंमें समाप्त हुआ है।

४ समवायाङ्ग–इसमें जीवादि पदार्थोंकी समानताका विशद वर्णन किया गया है। १ लाख ६४ हजार पदोंमें इसकी व्याख्या समाप्त हुई है।

५ व्याख्या प्रज्ञप्ति–इसमें गणाधीश इन्द्रभूति द्वारा किए ६० हजार प्रश्नोंका उत्तर विशद रूपसे दिया गया है। यह व्याख्या २ लाख ८० हजार पदोंमें समाप्त हुई है।

६ ज्ञातृ धर्मकथाङ्ग–इसके द्वारा महापुरुषोंके जीवनचरित्र तथा तीर्थङ्करोंके धर्मोपदेशका वर्णन है। इसके ५ लाख ५६ हजार पद हैं।

७ उपासकाध्ययनाङ्ग–गृहस्थ जीवनके संपूर्ण कर्तव्योंकी इसमें व्याख्या की गई है। इसमें ११ लाख ७० हजार पद हैं।

८ अन्तःकृत दशाङ्ग–तीर्थङ्करोंके समयमें होनेवाले महान उपसर्ग-विजयी साधुओंके जीवन तथा उनके कर्तव्योंका विशद वर्णन इसमें किया गया है। यह २३ लाख २८ हजार पदोंमें समाप्त हुआ है।

९ अनुत्तरोपपादिक दशाङ्ग—इसमें तीर्थङ्करोंके समयमें होनेवाले उपसर्ग विजयी साधुओंकी तपस्याका विशद वर्णन है। यह ९,२ लाख ४४ हजार पदोंमें समाप्त हुआ है।

१० प्रश्न व्याकरणाङ्ग—इसमें धर्मकथाओं तथा भूत, भविष्यत, वर्तमानमें होनेवाले लाभ अलाभादिके प्रश्नोंका उत्तर देनेकी विधि प्रदर्शित की गई है। यह ९,३ लाख १६ हजार पदोंमें समाप्त हुआ है।

११ विपाक सूत्राङ्ग—इसके द्वारा कर्मोंके उदय, बन्ध तथा उनकी स्थिति आदिकी विशद व्याख्या की गई है।

१२ दृष्टि प्रवादाङ्ग—इसके पांच प्रकार हैं—१ परिकर्म, २ सूत्र, ३ प्रथमानुयोग, ४ पूर्वगत, ५ चूलिका।

१ परिकर्मके पांच भेद हैं—

१ चन्द्रप्रज्ञप्ति, २ सूर्यप्रज्ञप्ति, ३ जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति, ४ द्वीपसागर प्रज्ञप्ति, ५ व्याख्या प्रज्ञप्ति।

२ सूत्र—इसमें क्रियावाद, अक्रियावाद, अज्ञानवाद, विनयवाद आदि मत मतांतरोंका निरूपण है।

३ प्रथमानुयोग-इसमें ६३ महान् पुरुषोंका जीवनचरित्र अङ्कित है।

४ चौदह पूर्व—

१ उत्पाद पूर्व—पदार्थोंके उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य आदिका वर्णन।

२ अग्रायणी पूर्व—सुनय, कुनय, तत्व, पदार्थ, द्रव्यों आदिकी व्याख्या है।

३ वीर्यानुवाद पूर्व—जीव, अजीवकी शक्ति, क्षेत्र, काल, भाव, गुण, पर्याय आदिकी व्याख्या।

४ अस्तिनास्ति प्रवाद—अस्तिनास्ति आदि सप्त नयोंका विवरण।
५ ज्ञानवाद—अष्ट ज्ञानोंका विवेचन।
६ सत्य प्रवाद—१२ प्रकारकी भाषा और सत्य, असत्य आदिकी व्याख्या।
७ आत्म प्रवाद—आत्म स्वरूपका विस्तृत विवेचन।
८ कर्मप्रवाद—कर्म प्रकृतियोंकी सूक्ष्म व्याख्या।
९ व्याख्यान पूर्व—त्यागका विधान।
१० विद्यानुवाद पूर्व—महाविद्याओं और यंत्रमंत्रादिका विवरण।
११ कल्याणवाद—६३ महापुरुषोंका कल्याणमय जीवन विवरण।
१२ प्राणवाद—वैद्यक, स्वरोदय, रोगहारक मंत्र विवरण।
१३ क्रियाविशाल—संगीत, छंद, अलंकार तथा गर्भाधानादि क्रियाओंका विवरण।
१४ त्रिलोकबिंदु सार—तीनलोकका स्वरूप, बीजगणित आदिका विवेचन।

५ चूलिका—इसके ५ भेद हैं—१ जलगता २ स्थलगता ३ मायागता ४ रूपगता ५ आकाशगता, इसमें जल. स्थलमें चलने और परिवर्तन, आकाश गमन आदिकी व्याख्या है।

प्रकीर्णक १४—

१ सामायिक—सामायिकके भेद और व्याख्या।
२ चतुर्विंशतिस्तव—२४ तीर्थंकरोंकी स्तुति।
३ वंदना—तीर्थंकरका वंदन।

४ प्रतिक्रमण—दोषोंका निराकरण और पश्चात्तापका विवेचन।
५ वैनयिक—विनयका विस्तृत विवरण ।
६ कृतिकर्म—नित्यकर्म विवरण ।
७ दशवैकालिक—काल तथा मुनि आहारका विवेचन ।
८ उत्तराध्ययन—उपसर्ग, परिषह आदिकी व्याख्या ।
९ कल्पव्यवहार—मुनिके चारित्रका वर्णन ।
१० कल्पाकल्प—साधुके योग्य द्रव्य, क्षेत्रका विवेचन।
११ महाकल्प—साधुके भेदोंका वर्णन ।
१२ पुंडरीक—दान, पूजा, शुभ कृत्योंकी व्याख्या।
१३ महापुण्डरीक—तप आदिका विवेचन।
१४ निषिद्धिका—प्रायश्चितका कथन ।

यह अक्षरात्मक श्रुतज्ञानका विवेचन है जिसे इन्द्रभूति गणधरने व्यवस्थित रूपसे संग्रहीत किया था ।

जैनाचार्य ।

(१)

श्री कुन्दकुन्दाचार्य ।

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी ।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥

कुन्दकुन्दाचार्य जैन समाजके प्रातःस्मरणीय विद्वानोंमेंसे हैं। प्रत्येक मंगलकार्यके प्रारम्भमें आपका नाम भगवान महावीरके साथ बड़ी श्रद्धा और भक्तिके साथ लिया जाता है। जैनाचार्योंमें यह गौरवप्रद स्थान आपको ही प्राप्त है और आप इस गौरवके सर्वथा योग्य है।

आचार्य कुन्दकुन्दने अपनी—चारित्रनिष्ठा, पवित्र त्याग, धर्मोपदेश और आध्यात्मिक साहित्य निर्माणके प्रभावसे दिगंबर जैन समाजका मस्तक सदैवके लिए ऊपर उठाया है। वे आध्यात्मिक साहित्यके मूलाधार समझे जाते हैं। वास्तवमें दि० जैन धर्मको प्रकाशमें लाने और उसका महत्व प्रदर्शित करनेमें आचार्य महोदयने जो प्रयत्न किया है वह स्वर्णाक्षरोंमें अङ्कित रहेगा।

जीवन रेखाएं—

जैनधर्म और साहित्यका मस्तक ऊंचा रखनेमें दक्षिण भारत अग्रगण्य रहा है । महा विद्वान् आचार्योंको जन्म देकर यह प्रान्त अत्यन्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका है ।

आचार्य महोदयका जन्म कुरुमरई नामक ग्राममें हुआ था, यह स्थान पिदूथनाडु नामक प्रदेशमें है ।

आपके पिताका नाम करमण्डु और माताका श्रीमती था । करमण्डु वैश्य जातिके एक धनिक व्यक्ति थे वे निःसंतान थे । एक तपस्वी ऋषिको दान देनेके प्रभावसे उनके पुत्ररत्नका जन्म हुआ जो आगे चलकर कुन्दकुन्द नामसे प्रसिद्ध हुआ ।

बाल्यावस्थासे ही वे अत्यंत प्रखर बुद्धिके थे । अपनी विलक्षण स्मरणशक्ति और तीक्ष्ण बुद्धिके बलसे उन्होंने अल्प समयमें ही अनेक ग्रन्थोंका अध्ययन कर लिया था । युवावस्थामें प्रविष्ट होते ही उनके हृदयमें संसारके प्रति विरक्ति पैदा हुई । उन्होंने विलास और वैभवके बदले संसारमें सद्धर्मका संदेश फैलाना ही अपने जीवनका कर्तव्य समझा, वे संसारसे विरक्त हो गए और जिनचन्द्राचार्यके निकट उन्होंने मुनिदीक्षा ग्रहण कर ली ।

जिनचन्द्राचार्य उस समय जैनधर्मके प्रसिद्ध आचार्य थे । ई० सन् ८ में उन्हें आचार्य पद प्राप्त हुआ था । जिन दीक्षा लेकर वे आत्म-साधनामें निमग्न हो गए । नीलगिरि पर्वतको उन्होंने अपने तपश्चरणका स्थान बनाया । मलय देशके हेम ग्राम (पोन्नर)

के निकट इस पर्वतकी चोटीपर दक्षिणकी जनताने अत्यंत श्रद्धा और भक्तिसे उनके चरणचिह्न अंकित किए जो आज तक मौजूद हैं।

तीव्र तपश्चरणके प्रभावसे उन्हें अनेक चमत्कृत ऋद्धिएं प्राप्त हुईं लेकिन उन्हें ऋद्धियोंसे मोह नहीं था, संसारमें जैनधर्मका पवित्र संदेश फैलाना ही उनका लक्ष्य था। अपनी महान भावनाओंको सफल बनानेके लिए उन्होंने अपनी संपूर्ण यौगिक शक्तियों और प्रभावशालिनी प्रतिभाको इस ओर लगा दिया वे अपने उद्देश्यमें सफल हुए, महान् त्याग, तपश्चरण और बुद्धिबलसे उन्होंने अध्यात्म-विद्याका सर्वत्र प्रचार किया।

अपने समयके वे एक पवित्र चिंतनशील और तत्त्वज्ञानी महात्मा बन गए। उन्होंने अनेक महत्त्वशाली ग्रंथोंका प्रणयन किया जो अत्यंत प्रामाणिक और अद्वितीय समझे जाते हैं।

समय निर्णय—

यद्यपि आपके जन्मकालका निश्चित समय अभीतक ज्ञात नहीं होसका। ग्रंथ प्रशस्तियोंमें आपके समयका कुछ भी उल्लेख नहीं मिलता है जिससे समयका यथार्थ निर्णय किया जासके। आपकी गुरुपरम्परा भी उपलब्ध नहीं है किन्तु बोधपाहुड़में आपने अपनेको द्वादशांगके ज्ञाता और चौदह पूर्वोंका विस्तार रूपसे प्रसार करनेवाले श्रुतज्ञानी भद्रबाहुका शिष्य सूचित किया है। भद्रबाहु आपके गमक गुरु थे इसपरसे आपका जन्म सन् ईस्वी १ के लगभग समझा जाता है। अन्य विद्वानोंने भी आपका समय विक्रम संवत्‌की प्रथम शताब्दि निश्चित किया है। प्राकृत पट्टावलीमें भी सं० ४९ दिया है।

धर्मप्रचार—

कुन्दकुन्दाचार्यका धार्मिक प्रचार क्षेत्र प्रायः दक्षिण भारत ही रहा है। उस समय काञ्चीपुर धार्मिक क्षेत्र समझा जाता था। आपने बहुत समयतक कांचीपुरके निकट जैन धर्मका विस्तृत रूपसे प्रचार किया। दिगंबर सम्प्रदायके सार्वभौमिक सिद्धान्तोंको बड़ी दृढ़ताके साथ आपने संसारके सामने रखा। आपकी युक्तियें अकाट्य थीं। आपका प्रभाव सर्वमान्य था। आपके प्रमाण और युक्तियोंको उस समयके प्रायः समस्त विद्वानोंने स्वीकृत किया है।

प्रतिभाशाली विद्वान्—

आचार्य कुन्दकुन्द उच्च कोटिके विद्वान् थे। प्राकृतके अतिरिक्त तामिल भाषापर भी आपका अधिकार था। तामिल भाषामें आपकी सर्वमान्य रचना 'कुरल काव्य' के नामसे प्रसिद्ध है। यह नीतिका सुन्दर ग्रंथ है। प्राकृत भाषामें आपने प्राभृतत्रय, षट्पाहुड़, नियमसार आदि ग्रंथोंकी रचना की है जिससे आपके बढ़े हुवे ज्ञानका परिचय प्राप्त होता है।

महत्वपूर्ण घटनाएं—

कुन्दकुन्दाचार्य विद्वान् होनेके अतिरिक्त महा योगी और ऋद्धि-प्राप्त ऋषि थे। आपकी यौगिक शक्तिका प्रदर्शन करनेवाली निम्न घटनाएं अत्यंत प्रसिद्ध हैं—

(१) एक समय आचार्य महोदयने धर्मप्रचारकी उत्कट भावनाको लेकर विदेहक्षेत्र जानेका संकल्प किया—वहां जाकर वे

विद्यमान तीर्थंकर श्री सीमंधरस्वामीसे ज्ञान प्राप्त करना चाहते थे। उनकी दृढ़ इच्छा–शक्तिसे चारण देवताने प्रकट होकर उन्हें विदेहक्षेत्र पहुंचा दिया। वहां उन्होंने सिद्धान्तका अध्ययन किया और तीर्थंकरके पवित्र ज्ञानको लेकर उसका प्रचार किया।

(२) एकवार कुन्कुन्दाचार्य विशाल संघ लेकर गिरनार यात्राको गए। संघके साथ साधुओंकी संख्या ५९४ के लगभग थी। उसी समय शुक्लाचार्यकी अध्यक्षतामें श्वेतांबर संघ भी यात्रार्थ गया था। श्वेतांबर आचार्य अपनेको प्राचीन मानते थे और चाहते थे कि पहले हमारा संघ यात्रा करे। दिगंबराचार्य पहले अपना संघ लेजाना चाहते थे। अन्तमें दोनोंमें विवाद चल पड़ा और प्राचीनता सिद्ध करनेके लिए दोनों आचार्योंमें शास्त्रार्थ होने लगा। शास्त्रार्थ द्वारा कुछ निश्चित न हो सकने पर संघ-समूहने यह निश्चय किया कि इस पर्वतकी रक्षिकादेवी जो निर्णय दे वही सर्वमान्य हो। कुन्दकुन्दाचार्यने अपने मंत्र-बलसे गिरनार पर सरस्वतीदेवीको आमंत्रित किया उसने दिगम्बर संप्रदायकी प्राचीनता सिद्ध की। सभीने उसके निर्णयको स्वीकार किया और दिगम्बर संघने सर्व प्रथम यात्रा की।

(३) विदेहक्षेत्र जाते हुए आचार्य महोदयकी पिच्छिका मार्गमें ही गिर पड़ी तब आपने गृद्ध पक्षीके परोंकी पिच्छि धारण की इससे आप गृद्धपिच्छिकाचार्यके नामसे प्रसिद्ध हुए।

(४) विदेहसे आनेपर आचार्य महोदय सिद्धान्तके अध्ययनमें इतने तन्मय होगए कि उन्हें अपने शरीरका भान नहीं रहा। अथक परिश्रम करते हुए उन्हें समयका भी कुछ ध्यान नही रहा। गर्दन-

हुआए हुए वे आपने अध्ययनमें इतने व्यस्त रहे कि अध्ययनकी उत्क-टताके कारण उनकी गर्दन टेढ़ी पड़ गई और लोक इन्हें वक्रग्रीवके नामसे पुकारने लगे। जब उन्हें अपनी इस अवस्थाका ज्ञान हुआ तब अपने योग साधन द्वारा इन्होंने अपनी ग्रीवा पुनः ठीक करली।

अस्तोदय—

आचार्य महोदयने अपना संपूर्ण त्यागमय जीवन धर्मप्रचार और अन्य निर्माणमें ही व्यतीत किया। अनेक देशोंमें धर्मप्रचार करते हुवे अन्तमें दक्षिण भारत लौट आए। इन्होंने अब अपने आपको आत्म-ध्यानमें संपूर्णतः निमग्न कर लिया था। योग-निरत रहकर इन्होंने सन् ४२ के लगभग अपनी जीवनयात्रा समाप्त की। वे आत्मविजयी युगप्रधान महापुरुष थे।

ग्रन्थ परिचय—

आत्म निर्णय सम्बन्धी ग्रंथोंके निर्माणके अतिरिक्त तत्वविज्ञानके उच्चकोटिके महत्वशाली ग्रन्थोंकी आपने रचना की है। आपके ग्रंथोंकी भाषा प्राकृत है। आपकी भाषा अत्यन्त सरल, सुबोध और सुन्दर है।

(१) अष्ट पाहुड़—दर्शन पाहुड़, सूत्र पाहुड़, बोध पाहुड़, चारित्र पाहुड़, भाव पाहुड़, लिंग पाहुड़ और शील पाहुड़ इन प्राभृतोंके नामसे ही इनके विषयकी सूचना प्राप्त होजाती है। प्रत्येक विषयको आचार्य महोदयने विस्तृत रूपसे समझाया है। आपका यह ग्रन्थ जैन समाजमें आगमके रूपमें मान्य है। आत्म विवेचनाके साथ २ मुक्ति और उसके साधनोंका इसमें दिग्दर्शन कराया गया है। हिन्दी अनुवाद सहित यह ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका है।

समयसार—आचार्य महोदयका यह ग्रन्थ जैनसमाजमें अत्यंत प्रसिद्ध है। अध्यात्म विद्याके रहस्यको उद्घाटित करनेवाला इतना सरस सुबोध और पूर्ण अपने ढंगका यह एक ही ग्रन्थ है। इसमें शुद्ध आत्म द्रव्यका विवेचन है। आत्मगुण, आत्मतन्मयता, आत्म निरूपण और शुद्धात्मका स्पष्ट रूप इसमें दिग्दर्शित किया है। भाषा अत्यंत सरल हृदयग्राहिनी और धाराबाहिक है। इस ग्रंथके अध्ययनसे आत्मरहस्य उद्घाटित होकर आत्म तन्मयताकी प्रचंड लहरें लहराने लगती हैं और मानव मन कुछ समयको अपूर्व अध्यात्म रसमें निमग्न हो जाता है। इस ग्रन्थपर आचार्य अमृतचंद्रने विशद व्याख्या टीका लिखी है जिसमें समयसारको अत्यंत स्पष्ट कर दिया है।

पं० बनारसीदासजीने इसी ग्रंथके आधारसे एक नाटक समयसार नामक भाषा ग्रंथकी रचना की है।

समयसारकी और भी अनेक हिंदी टीकाएं हुई हैं। हिंदी तथा संस्कृत टीका सहित यह ग्रन्थ कई स्थानोंसे प्रकाशित होचुका है।

नियमसार—आचार्य महोदयकी यह एक अमूल्य कृति है। इसमें अपने विषयका प्रतिपादन आकर्षक ढंगसे किया है। यह ग्रन्थ भी प्रकाशित हो चुका है।

पंचास्तिकाय—

इस ग्रंथद्वारा आचार्य महोदयने धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल इन पांच अस्तिकाय द्रव्योंका विवेचन किया है। वर्णनशैली सरस, सरल और सुबोध है। इस ग्रन्थके द्वारा इन अजीव द्रव्योंका सुन्दर चित्र चित्रित किया है। अनेक सुन्दर उदाहरणों द्वारा द्रव्योंके

स्वरूपको स्पष्ट कर दिया है। भाषा अत्यन्त सुबोध और सरल है। द्रव्यानुयोग जैसे सूक्ष्म विषयको इतनी सफलतासे समझा देना आचार्य महोदयके विशाल भाषाज्ञानका परिचायक है।

प्रवचनसार—इस ग्रन्थमें जैनागमका रहस्य अत्यन्त सरलतासे उद्घाटित किया गया है। इसमें जैन सिद्धांतके मूलतत्वोंका पूर्ण विवेचन है। गहन विषयोंका इस उत्तमतासे प्रतिपादन किया गया है कि पाठकको उनके समझनेमें कोई कठिनाई नहीं होती। यह ग्रंथ कई यूनिवर्सिटियोंकी परीक्षाओंमें सम्मिलित है। बम्बईसे सुन्दर हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित हो चुका है।

आचार्य महोदयकी यह सभी कृतियें जैन साहित्यकी दृष्टिसे उनकी अमूल्य देन है। इसके लिए संपूर्ण जैन समाज उनका चिरकाल तक उपकृत रहेगा।

उमास्वामी ।

तत्त्वार्थशास्त्र कर्त्तारं, गृद्धपिच्छोपलक्षितम् ।
वन्दे गणीन्द्र संजात–मुमास्वामी मुनीश्वरम् ॥

तत्वार्थसूत्रसे जैन समाजका आबाल वृद्ध परिचित है। प्रत्येक धार्मिक जैन मात्र उसे कंठ करके अथवा श्रवण करके अपनेको सौभाग्यशाली समझता है। दिगंबर और श्वेतांबर दोनों समाजोंमें थोड़ेसे पाठ–भेदके साथ वह समान रूपसे आदरणीय माना जाता है, यह विशेषता तत्वार्थसूत्रको ही प्राप्त है। एकसी मान्यता और प्रामाणिकताका यह सौभाग्य उसे ही प्राप्त है।

वास्तवमें आचार्यप्रवर उमास्वामी, तत्वार्थसूत्रकी रचना द्वारा संपूर्ण जैन समाजको वह अमूल्य निधि प्रदान कर गए हैं जो संसारमें कल्पांत तक एक शुभ्र प्रकाशकी किरणें फैलाती रहेगी।

जीवन परिचय—

'तत्वार्थसूत्र' को जैन समाज जितना जानता है खेद है उसके निर्माण कर्ता आचार्य उमास्वाति या उमास्वामीसे उतना ही कम परिचित है। विद्वानों द्वारा अथक प्रयत्न करने पर भी उनके जीवन संबंधमें कुछ विशेष ज्ञात नहीं होसका। आज हम गहन अंधकारमें

उनकी जीवन किरणोंकी कुछ खोज करते हैं, परन्तु निराश होकर रह जाते हैं, और अनुमानसे हमें जो कुछ मिलता है उसी पर संतोष कर लेते हैं।

दिगंबर सम्प्रदायमें उमास्वामीको शिलालेखों तथा आचार्यकी पट्टावलियोंके आधार पर कुंदकुंदस्वामीका अन्वयी अधिवंशज सूचित किया है। श्रवणबेलगोलके शिलालेखमें उन्हें गृद्धपिच्छाचार्य नामसे उल्लेखित किया है और नगरताल्लुकके शिलालेखमें श्रुतकेवलि देशीय प्रकट किया है।

श्वेताम्बरीय तत्वार्थाधिगम सूत्रपर स्वोपज्ञ कहे जानेवाले भाष्यकी अंतिम प्रशस्तिमें उमास्वातिका परिचय दिया है जिसका संक्षिप्त यहां दिया जाता है।

उमास्वातिके पिताका नाम स्वाति और माताका नाम वात्सी कहा गया है। उनका जन्म न्यग्रोधिका नामक नगरमें हुआ था जो उच्चनागरकी शाखाका था। उनका गोत्र कौभीष्पणि था जो उन्हें उच्च कुलीन ब्राह्मण या क्षत्रिय होना प्रकट करता है। 'मूल' नामक वाचकाचार्य उनके विद्यागुरु और महावाचक मुन्डपाद प्रगुरु थे। दीक्षागुरु ग्यारह अंगके धारक घोषनंदि श्रमण थे। तत्वज्ञानसे अनभिज्ञ दुखित जनताके लिये कुसुमपुर नामक नगरमें उन्होंने तत्वार्थाधिगम शास्त्रकी रचना की थी।

समय—आचार्य उमास्वातिका समय कुन्दकुन्दाचार्यके पश्चात् विक्रमका प्रथम पाद या दूसरी शताब्दिका पूर्वार्द्ध माना जाता है।

तत्वार्थसूत्रकी सबसे प्राचीन टीका 'तत्वार्थवृत्ति' है। उनके कर्ता

आचार्य देवनंदि (पुज्यपाद) का समय इसकी पांचवीं शताब्दि निश्चित किया है। अतः तत्वार्थसूत्रको उससे बहुत पूर्वकी कृति समझना चाहिये।

योग्यता—संस्कृत साहित्यके धुरंधर इतिहासकारोंने उमास्वातिको जैनाचार्योंमें संस्कृतका सर्व प्रथम लेखक कहा है। उनका संस्कृत भाषा पर पूर्ण अधिकार था। उनके ग्रंथकी लेखनशैली संक्षिप्त, प्रशस्त और शुद्ध संस्कृत रूपमें है।

आचार्य महोदय भूगोल, खगोल, आचार, आत्मविज्ञान और पदार्थोंके रहस्योंके कुशल विज्ञाता थे। उनका श्रुतज्ञान महान था। संपूर्ण जैनागमके अतिरिक्त वैशेषिक, न्याय, योग और वौद्ध आदि दार्शनिक साहित्यका उन्होंने गहन अध्ययन किया था।

उमास्वामिने वीर-वाणीके संपूर्ण पदार्थोंका संग्रह तत्वार्थ सूत्रमें किया है। एक भी महत्वपूर्ण विषयका कथन किये विना नहीं छोड़ा है इसीसे आचार्य महोदयको सर्वोत्कृष्ट निरूपक कहते हैं।

तत्वार्थसूत्रका निर्माण—तत्वार्थसूत्रकी रचनाके संबंधमें दिगंबर सम्प्रदायमें एक प्रसिद्धि है।

सौराष्ट्र देशके ऊर्जयंतगिरिके समीप गिरि नामक ग्राममें सिद्धय्य नामका एक प्रसिद्ध विद्वान् था जो शास्त्रोंका ज्ञाता आसन्नभव्य और स्वहितार्थी था। द्विजकुलमें उसका जन्म हुआ था। उसने एक समय दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः यह सूत्र बनाकर पाटियेपर लिख लिया उसे उसी तरह छोड़कर वह किसी कार्यवश बाहर चला गया। इसी

पूज्यपादस्वामी द्वारा लिखित 'सर्वार्थसिद्धि' नामकी तत्वार्थ व्याख्या टीका ।

भट्टाकलंक देव रचित 'राजवार्तिक' नामक भाष्य । शिवकोटि द्वारा बनाई गई 'तत्वार्थ टीका' जो अप्राप्त है । विद्यानंदिस्वामी द्वारा रचित 'श्लोकवार्तिक' नामक श्लोकबद्ध विस्तृत व्याख्या ।

श्रुतसागरजी द्वारा रचित 'श्रुतसागरी टीका' । इसके अतिरिक्त विबुधसेन, योगीन्द्रदेव, योगदेव, लक्ष्मीदेव और अभयनंदिसूरि नामक प्रसिद्ध विद्वानोंने तत्वार्थ पर साधारण टीकायें लिखी हैं ।

भास्करनंदी, पद्मकीर्ति, कनककीर्ति, राजेन्द्रमौलि और प्रभाचंद्रादि और कितने ही विद्वानोंने तत्वार्थसूत्रपर संस्कृत व्याख्याएं लिखी हैं। हिन्दीमें भी अनेक टीकाएं लिखी गई हैं ।

श्वेतांबर संप्रदायमें उमास्वातिके नामसे एक भाष्य प्रसिद्ध है जिसे स्वोपज्ञ कहा जाता है और उस पर सिद्धसेनगणीकी ९वीं शताब्दीकी एक टीका है ।

आचार्य उमास्वामि जैन समाजको एक ऐसा चिरस्मरणीय ज्ञान प्रदान कर गए हैं जिसके लिए समाज उनका चिरऋणी रहेगा ।

(३)

स्वामी समंतभद्राचार्य ।

सरस्वतीस्वैरविहारभूमयः समन्तभद्रा-प्रमुखामुनीश्वराः ।
जयन्तुवाग्वज्रनिपातपाती प्रतीपराद्धान्तमहीध्रकोटयः ॥

—वादिभसिंह ।

" श्री समंतभद्र मुनीश्वर सरस्वतीकी स्वच्छंद विहार भूमि थे। उनके वचनरूपी वज्रके निपातसे प्रतिपक्षी सिद्धान्त रूपी पर्वतोंकी चोटियां खण्ड खण्ड हो गई थीं।"

जिन शासनकी गौरव पताकाको नीलाकाशमें फहरानेवाले प्रचण्ड आत्मबलशाली स्वामी समंतभद्राचार्यको कौन नहीं जानता! उनका वह अपूर्व तेज, उनका महान व्यक्तित्व आज भी भारतमें उनकी गौरव-गरिमाको प्रदर्शित कर रहा है।

जीवन किरणें—

समंतभद्राचार्यका जन्म दक्षिण भारतमें हुआ था। विद्वानोंका अनुमान है कि आपका जन्म कदम्बराज वंशमें हुआ था। आपके पिता उरगपुरके क्षत्रिय राजा थे। यह स्थान कावेरी नदीके तट पर फणिमंडलके अन्तर्गत अत्यंत समृद्धिशाली था। आपके माता पिताका क्या नाम था यह अब तक अविदित है।

आपका जन्म नाम शांतिवर्मा था। बाल्यावस्थासे ही आप प्रखर प्रतिभाशाली थे। आपका शिक्षण अपने ग्राममें ही हुआ था। आपके गार्हस्थिक जीवनके सम्बन्धमें कुछ ज्ञात नहीं होसका किन्तु यह निश्चितसा है कि आपके हृदयमें धर्मोद्धारकी प्रबल भावनाएं भरी हुई थीं। लोक-कल्याणको ही आपने अपना जीवन ध्येय बनाया था। आप जिन शासनकी सेवा और उसके प्रचारमें ही अपना जीवन लगा देना चाहते थे। अपनी बलवती भावनाओंको सफल बनानेके लिये अल्पकालमें ही आपने साधु—दीक्षा ग्रहण की और ज्ञानशक्ति तथा त्याग जीवनको महान बनानेमें निरत हो गए।

समय निर्णय—

स्वामी समन्तभद्रका समय विक्रमकी दूसरी शताब्दी माना जाता है। वे बौद्ध विद्वान दिग्नागसे पूर्ववर्ती और नागार्जुनके सामयिक प्रतीत होते हैं।

प्रचण्ड विद्वत्ता—

आपके दीक्षागुरुका नाम अब तक अविदित है। इतिहास-कारोंका कथन है कि आपने कांची ग्राम या उसके निकट ही कहीं दीक्षा ग्रहण की थी। एक स्थानपर अपना परिचय देते हुये आपने कहा है मैं कांचीका नग्न साधु हूं। आप मूलसंघके प्रधान आचार्य थे। दीक्षा लेनेके पश्चात् आप अखण्ड ज्ञान संपादनमें निमग्न हो गए। आपका तपश्चरण भी अनुकरणीय था। कठोर अध्ययन और महान् प्रतिभाके कारण अल्प समयमें ही न्याय और तर्कशास्त्रके प्रचंड विद्वान होगए। आपने कांची देशमें विहार करके जैनधर्मका प्रकाश विस्तृत किया था।

भस्म व्याधि—

साधु जीवनमें कुछ समय व्यतीत करनेके पश्चात् ही स्वामी समन्तभद्राचार्यके ऊपर आपत्तिका आक्रमण हुआ । उस समय 'मणि-वक हल्ली' नामक ग्राममें धर्म देशना कर रहे थे तब अचानक ही उन पर व्याधिने अपना तीव्र प्रभाव डाला । उस व्याधिसे उन्हें अत्यंत वेदना होने लगी । वे साधु जीवनमें होनेवाले परिषहों और उपस-र्गोको सहनेमें समर्थ थे किंतु इस भयानक व्याधिने उनके हृदयको विचलित कर दिया ।

उन्होंने इस असह्य वेदनासे निवृत्ति पानेके लिए अपने गुरुसे सल्लेखना द्वारा शरीर त्यागकी आज्ञा मांगी । गुरुने अपने योग बलसे उन्हें धर्म और शासनके महान उद्धारक जानकर आज्ञा नहीं दी । परन्तु ऐसी स्थितिमें वे अपना साधु वेष भी सुरक्षित नहीं रख सकते थे इसलिये व्याधि शांतिके लिए उन्होंने दिगम्बर मुनिका पद त्याग-कर वैष्णव सन्यासीका भेष ग्रहण किया । सन्यासी बनकर वे भ्रमण करते हुए पौंड्रपुर नगरमें पहुंचे । वहां बौद्ध साधुके भेषमें कुछ समय तक रहे परन्तु इच्छित भोजन प्राप्त न होनेके कारण वहांसे चल दिये और विहार करते हुए वे दशपुर नगर पहुंचे । वहां भागवती साधु बनकर सदावर्तके रूपमें भोजन प्राप्त किया परन्तु इससे भी उनका रोग शांत नहीं हुआ ।

वाराणसीमें राजा शिवकोटिका राज्य था । उनके शिवालयमें षट्रस व्यंजनोंका नैवेद्य नित्य ही चढ़ाया जाता था; यह स्थान स्वामीजीने अपने उपयुक्त समझा । स्वामीजी शैव ऋषिका भेष धारण

कर शिवालयमें पहुंचे और सारा नैवेद्य शिवजीको ही खिला देनेका वचन दिया।

राजाको उनकी विचित्र शक्तिपर बड़ी श्रद्धा हुई और उन्हें शिवजीको संपूर्ण प्रसाद अर्पित करनेको आज्ञा प्रदान की। स्वामीजी मंदिरका द्वार बंद कर सवा मनका प्रसाद स्वयं भक्षण करने लगे। इस तरह तीन चार मास उनका क्रम चलता रहा। अब उनका भस्म रोग बहुत कुछ उपशांत होचुका था और प्रति दिन थोड़ा प्रसाद शेष रहने लगा। यह देख शिवभक्तोंका हृदय शंकित होने लगा। शिवभक्तोंकी आजीविका नष्ट होचुकी थी। अस्तु। वे स्वामीजीसे अत्यंत रुष्ट थे। यह अवसर देखकर उन्होंने राजासे स्वामीजीकी शिकायत की। राजाको भी उनपर संदेह हुआ। उन्होंने एक दिन स्वामीजीकी परीक्षाके लिए एक व्यक्तिको शिवजीके बिल्वपत्रोंमें छिपा दिया। उसने स्वामीका सारा रहस्य प्रगट कर दिया। राजा शिवकी अवज्ञा सहन नहीं कर सके। उन्हें स्वामीजीपर बड़ा क्रोध आया। उन्होंने क्रोधित होकर स्वामीजीसे शिवपिंडीको प्रणाम करनेके लिये कहा। स्वामीजीने यद्यपि अनेक भेष परिवर्तन किये थे किन्तु उनके अतरंगमें भस्मसे ढके हुए अंगारेकी तरह जैनत्व प्रकाशित हो रहा था। उन्होंने कहा— राजन्! मेरा प्रणाम शिवपिंडीको सहा नहीं होगा - वह खण्ड खण्ड हो जायगी। राजाने स्वामीजीको अपना चमत्कार दिखलानेकी आज्ञा दी। स्वामीजीने उसे स्वीकार किया और १ दिनका अवकाश मांगा। रात्रिको उन्होंने चतुर्विंशति स्तोत्रकी रचना की। प्रातःकाल राजा शिवकोटि और सम्पूर्ण जनताके सामने उन्होंने स्तोत्र पढ़ना

प्रारम्भ किया। चंद्रप्रभ तीर्थंकरकी स्तुति पढ़ते ही शिवपिंडिके स्थान-
पर चंद्रप्रभकी मूर्ति प्रकट हुई। महात्माके दृढ़ आत्मतेजका जीता
जागता चित्र देखकर राजा अत्यंत प्रभावित हुए। उनके हृदयपर जैन
धर्मके महत्वकी सुदृढ़ छाप अंकित हो गई। नतमस्तक होकर उन्होंने
स्वामीजीसे इनका परिचय पूछा। स्वामीजीने तेजस्विनी भाषामें अपना
परिचय दिया। स्वामीजीका परिचय जानकर राजाको उनपर अत्यंत
श्रद्धा हुई।

भस्म व्याधि नष्ट हो जानेपर स्वामी समंतभद्राचार्यने पुनः नग्न-
मुद्रा धारण की। राजा शिवकोटिने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया और
अनेक व्यक्तियोंने भी जैन धर्म धारण किया। शिवकोटिने स्वामीजीसे
ज्ञान संपादन करके भगवती आराधना नामक प्रसिद्ध ग्रन्थका
प्राकृत भाषामें निर्माण किया।

धर्मप्रचार—

स्वामी समन्तभद्राचार्यने पुनः आचार्यपद प्राप्तकर अनेक देशोंमें
भ्रमण किया और अपनी अलौकिक वाग्मिकता द्वारा भारतके अनेक
मतावलंबियोंको विजितकर सर्वत्र जैनधर्मका प्रकाश फैलाया। उनके
सिंहनादसे एक समयके लिये भारतका कोना२ गूंज उठा। कोई भी
वादी उनके साम्हने वाद करनेको तत्पर नहीं होता था। वे वादके
क्रीड़ाक्षेत्रमें अप्रतिद्वन्दी सिंहके समान विचरण करते थे। उनकी
प्रतिस्पर्धा करनेवाला उस समय दक्षिण भारतमें ही नहीं किन्तु सारे
भारतमें कोई नहीं था।

एक समय स्वामीजी वाद करते हुए 'करहाटक' नामक ग्राममें

पहुंचे उस समय वह नगरवादियोंका क्रीड़ा क्षेत्र था, अनेक उद्भट विद्वान राजाकी सभामें रहते थे, वहां उन्होंने रणभेरी बजाते हुए निम्नप्रकार घोषणा की—

"पहिले मैंने पाटलीपुत्रमें वादकी भेरी वजाई फिर मालवा, सिन्धुदेश, ढाका, कांचीपुर और वैदिशमें भेरी बजाई और अब बड़े २ विद्वान वीरोंसे भरे हुए इस करहाटक नगरमें आया हूं इस तरह हे राजन्! मैं वाद करनेके लिये सिंहके समान सर्वत्र घूम रहा हूं।"

ग्रन्थ रचना—

आचार्य समन्तभद्र जन साहित्याकाशके सूर्य थे। उनकी प्रज्ञा असाधारण और वस्तु–तत्वके मर्मकी उद्धारक थी। आपकी इस समय ५ कृतियां उपलब्ध हैं (१) रत्नकरण्ड श्रावकाचार, (२) वृहत्स्वयंभू स्तोत्र, (३) देवागम (आप्त मीमांसा), (४) जिन शतक और (५) युक्त्यनुशासनमें पांचों ही कृतियां यद्यपि आकारमें बहुत छोटी मालूम होती हैं किन्तु सूत्रात्मक और संक्षिप्त होते हुए भी बड़ी ही मार्मिक गम्भीर और बहु अर्थ प्रतिपादक हैं इनका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है—

रत्नकरण्ड श्रावकाचार—१५० श्लोक प्रमाण श्रावकोंके आचारका प्रतिपादक बहुत ही सुन्दर और सरल ग्रन्थ है। इसमें ग्रहस्थ धर्मका संक्षिप्त और साररूप कथन पाया जाता है। भाषा सरल और सुबोध है। इस ग्रन्थका जैन समाजमें खूब प्रचार है और प्रत्येक बालक बालिकाओंको पाठशालाओंमें यह कण्ठ कराया जाता है। इस ग्रन्थका सारी जैन समाजमें पूर्ण प्रचार है। इस पर आचार्य

प्रभाचन्द्रकी एक संस्कृत टीका भी है जो माणिकचन्द्र ग्रंथमालासे प्रकाशित हो चुकी है।

बृहत्स्वयंभू स्तोत्र—न्यायशास्त्रसे परिपूर्ण यह एक स्तवनात्मक ग्रंथ है। इसमें प्रत्येक श्लोकमें भक्तिके साथ साथ न्यायका अपूर्व सम्बंध जोड़ा गया है। अपनी विचित्र प्रतिभासे इस स्तोत्रमें इस तरहका वाक्य चित्रण किया गया है कि पढ़नेवालोंके सामने साक्षात् जिनेन्द्रका युक्तिपूर्ण वास्तविक चित्र प्रदर्शित होने लगता है। व्यंग, अलंकार, व्यंजना, रस और भाव सभीसे यह परिपूर्ण है। इसमें १४३ पद्योंमें चौवीस तीर्थङ्करोंकी स्तुति की गई है। किसी किसी तीर्थंकरके स्तवनमें कुछ पौराणिक और ऐतिहासिक बातोंका भी समुल्लेख किया गया है उससे उसकी महत्ता प्राचीनता और प्रामाणिकता पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। यह ग्रन्थ नित्य पाठ करने योग्य है।

देवागम—(आप्तमीमांसा)—स्वामी समन्तभद्रकी उपलब्ध कृतियोंमें यह सबसे प्रधान और असाधारण है। 'देवागम' वाक्यके साथ शुरू होनेसे इसे देवागम कहते हैं। इसमें ११४ द्रुत्त पद्यों द्वारा आप्त (सर्वज्ञ) की मीमांसा की गई है और स्तवन करते हुए एकांतवादोंकी बहुत ही सुंदर सूक्तियों द्वारा समालोचना की गई है। जैन दर्शनके आधारभूत स्तंभ ग्रंथोंमें यह सबसे प्रथम ग्रंथ है। इस ग्रंथपर अकलंकदेवने 'अष्टशती' नामकी एक वृत्ति बनाई है और उस पर आचार्य विद्यानंदने आठ हजार श्लोकोंमें अष्टसहस्री नामकी एक महत्वपूर्ण टीका लिखी है जिसमें अष्टशतीके गूढ़ मंतव्योंका रहस्य खोला गया है। आचार्य वसुनंदीने देवागमवृत्ति नामकी एक संक्षिप्त वृत्ति

बनाई है। ये सब टीकाये प्रकाशित हो चुकी हैं। आप्तमीमांसा या देवागम पर पं० जयचंद्रजी छावड़ा जयपुरने हिन्दीमें एक टीका लिखी है जो अनंतकीर्ति ग्रंथमालासे मुद्रित होचुकी है।

युक्त्यनुशासन—यह ग्रन्थ बड़ा ही महत्वपूर्ण है। इसमें भगवान महावीरका स्तवन करते हुए ६४ पद्यों द्वारा अन्य दर्शनान्तरीय मान्यताओंकी बड़ी ही मार्मिक आलोचना की है और उनके गुण दोषोंका विवेचन किया गया है। ग्रन्थकी कथनशैली संक्षिप्त, सूत्रात्मक और गम्भीर अर्थकी प्रतिपादक है। इसमें प्रत्येक विषयका निरूपण बड़ी ही खूबीके साथ किया गया है। इस ग्रंथ पर आचार्य विद्यानंदकी एक सुन्दर संस्कृत टीका भी प्राप्त है जो माणिकचन्द्र ग्रन्थमालामें मूल ग्रंथके साथ प्रकाशित हो चुकी है।

जीवसिद्धि—इस ग्रन्थका समुल्लेख पुन्नाट संघी जिनसेनने अपने हरिवंशपुराणके निम्न पद्यमें किया है—

जीवसिद्धि विधायीह, कृत युक्त्यनुशासनम्।
वचः समन्तभद्रस्य, वीरस्येव विजृम्भते॥

इस पद्यमें आचार्य समंतभद्र द्वारा जीवसिद्धि नामके ग्रन्थको बनाकर युक्त्यनुशासन नामके ग्रन्थ बनाये जानेका स्पष्ट उल्लेख किया गया है इससे प्रकट है कि समंतभद्राचार्यने जीवसिद्धि नामका भी कोई ग्रन्थ बनाया था परन्तु खेद है कि वह ग्रन्थ अभी तक प्रकाशित नहीं हो सका।

जिनशतक—यह एक अत्यन्त चमत्कारपूर्ण स्तुति ग्रन्थ है। इसमें २४ तीर्थंकरोंकी स्तुति कलापूर्ण ढंगसे की गई है। इसका

प्रत्येक श्लोक चित्रबद्ध काव्य है। आचार्य महोदयने इसमें अपने काव्यानुभवका अपूर्व परिचय दिया है। एक अक्षर द्वारा अनेकों अर्थोंका आनंद इसके द्वारा लिया जा सकता है।

तत्त्वानुशासन—इस ग्रन्थका नाम दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्ता और इनके ग्रन्थ नामकी सूचीमें दिये हुये समन्तभद्रके ग्रन्थोंमें पाया जाता है। और श्वेताम्बर कान्फ्रेंस द्वारा प्रकाशित जैनग्रन्थावलिमें भी तत्त्वानुशासनको समन्तभद्रका बनाया हुआ लिखा है, परन्तु यह ग्रन्थ अनेक ग्रन्थभण्डारोंको देखने पर भी प्राप्त नहीं हो सका और अबतक अप्राप्त हो रहा है।

गन्धहस्ति महाभाष्य—नामका ग्रंथ भी इनका बनाया हुआ कहा जाता है परन्तु उसकी उपलब्धि प्रयत्न करने पर भी नहीं हुई। इस तरह स्वामी समन्तभद्र अपने तेजस्वी जीवनके प्रभावसे भारतवर्षको अपनी अपूर्व ज्ञाननिधिसे आलोकित कर गये हैं। उनके महान एवं असाधारण व्यक्तित्वकी ध्वनि चिरकाल तक इस भूमंडलमें गूंजती रहेगी।

(४)

आचार्य देवनन्दि (पूज्यपाद)

"यो देवनन्दि प्रथमाभिधानो, बुद्ध्या महत्यास जिनेन्द्रबुद्धि ।
श्रीपूज्यपादोऽजनि देवताभिर्यत्पूजितं पादयुगं यदीयम् ॥
श्रीपूज्यपाद मुनिरप्रति मौषधर्द्धि, र्जीयाद्विदेह जिनदर्शनपूतगात्रः ।
यत्पादधौतजलस्पर्शप्रभावात्, कालाय संकिल तदा कनकी-
चकार ॥"

श्रवणबेलगोल शिलालेख नं० १०८ "जिनका प्रथम नाम देवनन्दी था और जो बादको बुद्धिकी प्रकर्षताके कारण जिनेन्द्रबुद्धि कहलाए वे आचार्य पूज्यपाद नामसे इसलिये प्रसिद्धिको प्राप्त हुए कि देवताओंने आकर उनके चरणोंकी पूजा की थी जो अद्वितीय औषधि ऋद्धिके धारक थे। विदेहस्थित जिनेन्द्र भगवानके दर्शनसे जिनका गात्र (शरीर) पवित्र होगया था और जिनके चरण धोये हुए जलके स्पर्शसे एक समय लोहा भी सोना बन गया था वे पूज्यपाद मुनि जयवन्त हों।"

पूज्यपाद स्वामी महान् प्रतिभाशाली आचार्य और युग-प्रधान-योगीन्द्र थे। आपकी विद्वत्ता अखंड और अतिशय पूर्ण थी। दिव्य

कीर्तिके आप स्तंभ थे। आपके द्वारा रचित ग्रंथोंसे निश्चित रूपसे विदित होता है कि आपकी योग्यता असाधारण थी।

जीवन परिचय—

राजावलीकथे ग्रंथके अनुसार आप कर्णाटक देशके निवासी थे। आपके पिताका नाम माधवभट्ट और माताका श्रीदेवी था। आप ब्राह्मण कुलके भूषण थे। मूलसंघके अंतर्गत नंदिसंघके आप प्रधान आचार्य थे। आपका दीक्षा नाम देवनंदी था। जिनेन्द्र बुद्धिके नामसे भी आप प्रसिद्ध हुए हैं। देवताओंके अधिपति द्वारा आप पूजे जानेसे आप पूज्यपादके नामसे प्रसिद्ध हुए।

समय निर्णय—आचार्य पूज्यपादका समय विक्रमकी छठी शताब्दीका पूर्वार्ध है। आप ईसाकी पांचवीं और विक्रमकी छठी शताब्दीके विद्वान् हैं।

पूज्यपाद चरित:—कवि चन्द्रयने कन्नड़ भाषामें पूज्यपाद चरित्र लिखा है उसमें आचार्य देवनंदि (पूज्यपाद) का जीवन अंकित किया है उसका सार निम्न प्रकार है—

“ कर्णाटक देशके कोले नामक ग्राममें माधवभट्ट नामक विद्वान् ब्राह्मण थे उनकी पत्नी श्रीदेवीके यहां आपका जन्म हुआ था।”

ज्योतिषियों द्वारा बालकको त्रैलोक्यका पूज्य बतलानेके कारण उसका नाम पूज्यपाद रखा गया। अपनी पत्नी द्वारा जैन धर्ममें दीक्षित हो जानेकी प्रेरणाके कारण माधवभट्टने जैनत्व स्वीकार कर लिया। माधवभट्टके साले पाणिनि थे उनसे भी जैनत्व ग्रहण करनेका आग्रह

किया, किन्तु वे इससे सहमत नहीं हुए और वे मुंडीगुंड नामक ग्राममें वैष्णव संन्यासी हो गये।

पूज्यपादकी छोटी बहिन कमिलनी थी उसका पाणिग्रहण गुणभट्टके साथ हुआ जिससे नागार्जुन नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। एक दिन पूज्यपादने एक सर्पके मुंहमें एक फंसे मेंढकको देखा इससे उन्हें वैराग्य हो गया और वे जैन साधु बन गये।

पाणिनिजी व्याकरण शास्त्रके विद्वान थे और वे व्याकरणकी रचना कर रहे थे। रचना समाप्त होनेके प्रथम ही उन्होंने अपना मृत्यु काल जान लिया, वे पूज्यपादके निकट आये और उनसे व्याकरण पूर्ण करनेके लिये कहा। पूज्यपादजीने उन्हें स्वीकार कर लिया। इसके बाद पाणिनिकी सर्प दंशके कारण मृत्यु हो गई। एकबार पूज्यपादको देखकर उक्त सर्पने फूत्कार किया जिसके उत्तर स्वरूप पूज्यपादने व्याकरणको पूर्ण करनेका विश्वास दिलाया और समय पश्चात् उसे पूर्ण भी कर दिया। इसके प्रथम वे जैनेन्द्र व्याकरण, प्रतिष्ठा लक्षण, और वैद्यक ज्योतिष आदिके कई ग्रन्थ रच चुके थे। गुणभट्टकी मृत्यु होने पर नागार्जुन दरिद्र होगया। पूज्यपादने उसे पद्मावतीका एक मंत्र दिया और सिद्ध करनेकी विधि बतला दी। पद्मावतीने नागार्जुनके निकट प्रकट होकर उसे सिद्ध रसकी वनस्पति बतलादी। नागार्जुन सिद्ध रससे सोना बनाने लगा। उसे अपनी रसायनकी जानकारी पर बड़ा गर्व होगया, उसका गर्व चूर करनेके लिये पूज्यपादने एक साधारण वनस्पति द्वारा बड़े २ सिद्धरस बना दिये जिसे देखकर नागार्जुनको उनपर बड़ी श्रद्धा हुई।

पूज्यपाद अपने पैरोंमें गगनगामी लेप लगाकर विदेहक्षेत्रको जाया करते थे उस समय उनके शिष्य वज्रनंदीने अपने साथियोंसे झगड़ा करके द्राविड़ संघकी स्थापना की।

पूज्यपाद मुनि बहुत समय तक योगाभ्यास करते रहे। फिर एक देवके विमानमें बैठकर इन्होंने अनेक तीर्थोंकी यात्रा की। मार्गमें एक जगह उनकी दृष्टि लोप होगई थी जिसे उन्होंने शान्त्यष्टक द्वारा ठीक करली। इसके बाद उन्होंने अपने ग्राममें जाकर समाधिपूर्वक मरण किया।"

× × ×

पूज्यपाद स्वामीके महत्वका अनुभव करते हुए उपरोक्त कथा पर अविश्वास नहीं किया जा सकता। सम्भव है कथामें कुछ अत्युक्ति होकर कथन किया गया हो फिर भी उसमें कुछ तथ्य जरूर है।

महत्व—पूज्यपाद स्वामी चतुर्मुखी प्रतिभाके स्वामी थे। आपने व्याकरण, काव्य, न्याय, तर्कशास्त्र, सिद्धांतशास्त्र आदि सभी विषयोंमें समानाधिकार प्राप्त किया था। आप महान दार्शनिक और व्याकरणके अद्वितीय विद्वान् थे। वैद्यक शास्त्रके अपूर्व ज्ञानके साथ ही आपने कवियोंमें सर्वश्रेष्ठताको प्राप्त किया था। इसके अतिरिक्त आप महान तपस्वी, अतिशय पूर्ण योगी और पूज्य महात्मा थे। कर्णाटकके प्रायः सभी प्राचीन कवियोंने आपके ग्रन्थोंमें बड़ी श्रद्धा और भक्ति रखते हुए आपके गुणोंकी मुक्तकंठसे प्रशंसा की है। एकान्त खंडन ग्रन्थमें श्री लक्ष्मीधरजीने षट्दर्शन रहस्य संवेदन संपादित निःसीम पांडित्य मंडिता विशेषणोंके साथ आपकी वंदना की है। जिनसेनाचार्यने

आपको कवियोंका तीर्थंकर कहा है। पद्मप्रभदेवने आपको शब्दसागरका चंद्रमाके नामसे स्मरण किया है। धनंजय कविने आपके व्याकरणको अपूर्व रत्न बतलाया है। इसी तरह और भी अनेक आचार्योंने आपका स्मरण किया है इन संक्षिप्त उद्धरणोंसे पूज्यपादका महत्व भली प्रकार प्रगट होता है।

पूज्यपाद स्वामीने अपना जीवन महान् ग्रन्थोंकी रचनामें ही लगा दिया था। अन्तमें आप बाह्य विषयोंसे अपनी प्रवृत्ति हटाकर आत्म निमग्न हो गये थे।

ग्रन्थरचना—

जैनेन्द्र व्याकरण—आपका जैनेन्द्र व्याकरण अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। सूत्रोंके लाघवादिके कारण वैयाकरणोंकी दृष्टिसे इसका बड़ा महत्व है। व्याकरणक्षेत्रमें उसकी काफी ख्याति और प्रतिष्ठा है। इसी व्याकरणके कारण भारतके आठ प्रमुख शाब्दिकोंमें आपकी गणना की गई है। आपका यह व्याकरण सर्वांगपूर्ण है।

सर्वार्थसिद्धि—यह तत्वार्थसूत्रकी सर्वप्रथम अत्यन्त प्रामाणिक टीका है पूज्यपादकी कथनशैली संक्षिप्त और प्रमेय बहुत है। श्वेतांबरी स्वोपज्ञ कहे जानेवाले भाष्यमें सर्वार्थसिद्धिके पदों और वाक्योंको ज्योंके त्यों रूपमें या कहीं कुछ परिवर्तनके साथ अपनाया गया है।

भट्टाकलंक और विद्यानंदी जैसे प्रतिष्ठित आचार्योंने इसके पदोंका अनुसरण किया है और बड़ी श्रद्धासे उन्हें स्थान दिया है। यह ग्रंथ प्रायः सभी विद्यालयोंके पठनक्रममें सम्मिलित है और हिन्दी तथा मरहठी टीका सहित प्रकाशित भी हो चुका है।

इष्टोपदेश—यह ५१ पद्योंका सुन्दर आध्यात्मिक ग्रन्थ है। इस ग्रंथका जैसा नाम है यह उसी तरहके सरस गुणोंसे परिपूर्ण है। पं० आशाधरजीकी संस्कृत टीकाके साथ माणिकचन्द्र ग्रंथमालामें छप चुका है।

समाधिशतक—यह भी एक महान आध्यात्मिक ग्रंथ है। इसमें एकसौ पांच श्लोकों द्वारा आत्माके रहस्यका उद्घाटन करते हुए संसारके दुःखोंका मूलकारण बाह्यपदार्थोंमें आत्मत्व बुद्धि बतलाया है। ग्रंथकी भाषा अत्यन्त सरल और पद्यरचना हृदयग्राहिणी है। इसके अध्ययनसे हृदय अलौकिक शांतिका अनुभव करता है। ज्ञात होता है कि आचार्य महोदयने अध्यात्म वाणीका मथन करके उसके रससे इसे भर दिया है। आत्म संबोधन और दुःख जालसे निवृत्तिके लिए यह ग्रन्थ महौषधिका कार्य करता है। यह ग्रन्थ वीर सेवा मंदिर सरसावासे हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित होचुका है। इसका प्रत्येक व्यक्तिको अध्ययन करना चाहिये।

सिद्ध भक्ति—यह नव पद्योंका बहुत ही महत्वपूर्ण ग्रन्थ है इसमें सूक्ष्मरूपसे आत्मसिद्धिका मार्ग और सिद्धिको प्राप्त होनेवाले सिद्धोंके गुणोंका सुन्दर विवेचन किया गया है। सिद्धभक्तिके साथ श्रुतभक्ति, चारित्रभक्ति, योगभक्ति, आचार्यभक्ति, निर्वाणभक्ति तथा नंदीश्वरभक्ति नामकी संस्कृत भक्तियां भी आपके द्वारा रची गई हैं जो बहुत ही महत्वपूर्ण हैं उनमें अपने नामके अनुरूप ही विषयका चित्रण किया है। इनके सिवाय शांत्याष्टक आदि अन्य कितनी ही रचनायें इनकी बतलाई जाती हैं।

धवका टीकामें आपके द्वारा एक सारसंग्रह नामक महत्वपूर्ण ग्रंथके रचे जानेका समुल्लेख भी मिला है। यह ग्रंथ उक्त उल्लेख परसे बड़े ही महत्वका ज्ञात पड़ता है। पूज्यपादने वैद्यकके सम्बंधमें भी कोई महत्वपूर्ण ग्रंथ रचा था जो इस समय प्राप्त नहीं है। इसके सिवाय छंद शास्त्र नामका ग्रन्थ भी इनका बनाया हुआ है। आचार्य जयकीर्तिने अपने छंदोनुशासन नामक ग्रन्थमें पूज्यपादके छंद शास्त्रका समुल्लेख किया है। स्वप्नावली नामका एक छोटासा सुंदर ग्रन्थ भी इन्हींके द्वारा रचा हुआ बतलाया जाता है। इस तरह आचार्य पूज्यपादने अपने आध्यात्मिक महान जीवनके साथ जगतको आत्मशांतिका संदेश दिया। उनकी वे अमर कृतियां मानव हृदयोंको सदा आलोकित करती रहेंगी।

(५)
पात्रकेशरी ।

पात्रकेशरी जैन धर्मके एक दिग्गज विद्वान् थे। आप प्रतिभा और प्रभाव दोनोंमें अग्रगण्य थे। आपकी विद्वत्ताका उस समयके सभी विद्वानों पर अपूर्व प्रभाव था। कुछ विद्वानोंने आचार्य पात्र-केशरीको विद्यानंदिके नामसे घोषित किया है जो ठीक नहीं है। क्योंकि पात्रकेशरी अथवा पात्रस्वामी और विद्यानंदि दोनों ही विद्वान् भिन्न भिन्न समयमें हुए हैं जिनमें पात्रकेशरी पूर्ववर्ती और विद्यानंद उत्तरवर्ती हैं। ये दोनों ही आचार्य ब्राह्मण कुलोंमें समुत्पन्न हुए थे और जैन धर्ममें दीक्षित होकर दिगम्बर साधु हुए थे। दोनों विद्वान् अपने समयके प्रसिद्ध तार्किक शिरोमणि थे। इनकी उपलब्ध कृतियां आज भी असाधारण प्रज्ञा एवं बुद्धिकौशलका परिचय दे रही हैं।

जीवन परिचय—

पात्रकेशरी द्रविलसंघके अग्रगामी थे। आपका जन्म कुलीन ब्राह्मण वंशमें हुआ था। राज्यके आप उच्च पद पर प्रतिष्ठित थे। ब्राह्मण समाजमें आपकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। प्रारम्भमें आप वैदिक मतके उपासक थे। स्वामी समंतभद्रके 'देवागम' स्तोत्रको सुनकर आपकी श्रद्धामें परिवर्तन हुआ था और आप जैन धर्ममें दीक्षित हो गए। आपका आचार पवित्र और ज्ञान निर्मल था। गृहस्थ

जीवनसे आप विरक्त रहते थे। जन सेवा और त्याग भावनाओंने आपके पवित्र हृदय पर इतना गहरा प्रभाव डाला कि आप गृह जीवनका त्याग कर जैन साधु बन गए। साधु जीवनमें रह कर आपने जैन धर्मकी काफी प्रभावना की।

आराधना कथाकोषमें आपके जीवन संबंधी एक कथा अत्यंत प्रचलित है उस कथाका संक्षिप्त यहां उद्धृत किया जाता है—

अहिछत्र नगरमें अवनिपाल नामक राजा राज्य करते थे उनके राज्यमें ५०० ब्राह्मण थे जो वेद विद्याविशारद थे उन्हें अपनी विद्याका अधिकाधिक घमंड था।

उसी नगरमें भगवान पार्श्वनाथका एक विशाल मंदिर था। पात्रकेशरी वहां नित्यप्रति जाकर पार्श्वनाथकी प्रतिमाका दर्शन किया करते थे और दर्शनके पश्चात् अपना कार्य प्रारम्भ करते थे। एक दिन संध्या समय ब्राह्मण समुदायके साथ वे पार्श्व मंदिर आए। उस दिन पार्श्व दर्शनके लिए कुछ दिगम्बर साधु भी आए हुए थे वे देवागम स्तोत्रका पाठ कर रहे थे। उसे सुनकर ब्राह्मणोंके अग्रगण्य पात्रकेशरीने एक मुनिराजसे उसका अर्थ जानना चाहा। मुनिमहोदयने स्तोत्रका अर्थ बतलानेमें अपनेको असमर्थ समझा। तब पात्रकेशरीने उनसे पुनः स्तोत्र पढ़नेके लिए आग्रह किया। मुनिमहोदयने स्तोत्र पढ़ा तब पात्रकेशरीने अपनी विचित्र स्मरण शक्तिके प्रभावसे उसे पूरा कंठ कर लिया और उसके अर्थका विचार करने लगे। ज्यों ज्यों उसका अर्थ विचारते गए त्यों त्यों उन्हें जैन तत्वों पर श्रद्धा उत्पन्न होती गई, रात्रिके समय उन्होंने स्तोत्रके अर्थ पर पुनः विचार किया, विचार

करते हुये उन्हें लक्षण अनुमान पर शंका उत्पन्न हुई। संशयके कारण उनकी निद्रा भंग हो गई उनके शंकित मनका समाधान करनेके लिए भगवान पार्श्वनाथकी उपासिका पद्मावतीदेवी उनके निकट आई। उसने पात्रकेशरीके हृदयको सांत्वना देते हुए कहा—प्रातः जब तुम पार्श्व मंदिर जाओगे तब मूर्तिके दर्शनसे तुम्हारा संशय दूर हो जायगा, फिर देवीने उसी समय जाकर पार्श्वनाथके फण पर निम्न श्लोक लिख दिया।

अन्यानुपपन्नत्वं यत्र यत्र त्रयेण किं।
नान्यथानुपपन्नत्वं यत्र यत्र त्रयेण किं॥

पात्रकेशरीने प्रातः पार्श्व मंदिरमें जाकर श्लोक पढ़ा तो उनकी शंका दूर हो गई और वे जैन धर्मके अनन्य श्रद्धालु बन गए।

ब्राह्मणोंको जब यह मालूम हुआ तो उन्होंने उनसे पूछा—तुमने मीमांसक जैसे मतको त्यागकर जैन मत क्यों ग्रहण किया? इसके उत्तरमें पात्रकेशरीने जैनधर्मको सत्यका प्रद्योतक कह कर उसकी प्रशंसा की। एकत्रित समस्त ब्राह्मणोंने मिलकर राजसभामें पात्रकेशरीके साथ वाद विवाद किया। पात्रकेशरीने अपनी प्रचण्ड विद्वत्ताका प्रदर्शन करते हुए सभी विप्रोंको विवादमें विजित कर दिया। विजित होकर उन पांचसौ ब्राह्मणोंने जैनधर्म स्वीकार किया और, राजा तथा ब्राह्मणोंने उनकी भक्ति की। कुछ दिनोंमें ही वे जैनधर्मके समर्थ आचार्य बन गए।

समय —

आचार्य पात्रकेशरी अकलंकदेवसे पूर्ववर्ती और पूज्यपादके उत्तरवर्ती मालूम होते हैं। बौद्ध विद्वान शांतरक्षितके 'तत्वसंग्रह' के प्रसिद्ध टीकाकार कमलशीलने पात्रस्वामीके मन्तव्योंकी समालोचना

की है जो विक्रमकी आठवीं शताब्दीके विद्वान् हैं अतः इसका समय इनसे पूर्ववर्ती है इस दृष्टिसे पात्रस्वामी छठवीं शताब्दीके विद्वान् जान पड़ते हैं ।

योग्यता—

स्वामी पात्रकेशरी एक बहुत बड़े आचार्य थे । आप दर्शन-शास्त्रके उच्चकोटिके विद्वान् और जैन तत्वोंका मनन एवं चिंतन करनेवाले परम तपस्वी थे । जैन धर्मके प्रकांड विद्वान् भगवज्जिन-सेनाचार्य जैसे आचार्योंने आपकी स्तुति करते हुए कहा है कि आपके निर्मल गुण विद्वानोंके हृदयपर हारकी तरह शोभित होते हैं । न्याय और तर्कशास्त्रमें आपकी असाधारण योग्यता थी । अनेक विद्वान आपके निकट आकर न्यायशास्त्रका अध्ययन करते थे । आप राज्य-मान्य और प्रतिष्ठित आचार्थ थे ।

ग्रंथ रचना—

स्वामी पात्रकेशरीने कितने ग्रंथोंकी रचना की है यह अबतक अविदित है । आपके निम्नलिखित ग्रंथोंका ही अभी पता चला है—

(१) **पात्रकेशरी स्तोत्र** या जिनेन्द्रगुण संस्तुति । यह स्तोत्र न्यायशास्त्रका अपूर्व ग्रंथ है । इस ग्रंथके महत्वको विद्वानोंने बड़े आदरके साथ स्वीकृत किया है । इस एक ग्रंथके द्वारा ही आपकी न्यायशास्त्रकी महान् योग्यताके दर्शन होते हैं । इसमें स्तुतिके द्वारा अपनी तर्क और गवेषणापूर्ण युक्तियोंका अच्छा परिचय दिया गया है । इस स्तोत्रमें ५० पद्यों द्वारा अर्हन्त भगवानके सयोग केवली अवस्थाके अन्य असाधारण गुणोंका सयुक्तिक विवेचन किया गया है

और उनके वस्त्र, अलंकार, आभरण और शस्त्रादिसे रहित प्रशांत एवं वीतराग शरीरका वर्णन करते हुए कषायजय, सर्वज्ञता और युक्ति तथा शास्त्र अविरोधी वचनोंका सयुक्तिक कथन किया है। प्रसंगानुसार सांख्यादि दर्शनान्तरीय मान्यताओंकी आलोचना भी की है। पश्चात् २५ वें पद्यमें केवलीके कवलाहारित्वका सयुक्तिक निरसन किया गया है। इस तरह इस स्तवनमें आर्हत भगवानके जन्ममरणादि अठारह दोषोंके अभावका युक्तिपूर्ण विवेचन हुआ है। ग्रन्थकारने स्वयं इस स्तवनको 'परमनिर्वृतिः साधनी' पदके द्वारा मोक्षका साधक बतलाया है। इस स्तवन पर अज्ञातकर्तृक एक संस्कृत टीका भी उपलब्ध है। यह स्तोत्र इस टीकाके साथ प्रकाशित हो चुका है।

(२) त्रिलक्षणकदर्थन—

बौद्धों द्वारा प्रतिपादित अनुमान विषयक हेतुके त्रिरूपात्मक लक्षणका विस्तारके साथ इस ग्रंथमें खंडन किया गया है। वादिराजसूरिने अपने न्यायविनिश्चयालंकारमें इस ग्रंथके संबंधमें कहा है—

महिमा सपात्रकेसरि गुरोः परं भवति यस्य भक्त्यासीत् पद्मावती सहाया, त्रिलक्षणं कदर्थनं कर्तुम् ।

यह ग्रन्थ ११ वीं शताब्दीमें मौजूद था परन्तु हमारे प्रमादके कारण अब अप्राप्य है।

आचार्य महोदय अपने अपूर्व त्याग और ज्ञानके द्वारा हमें सदैवके लिए उपकृत कर गए हैं। इस पुनीत भूतल पर उनका उज्ज्वल यश चन्द्रकिरणकी तरह अपनी प्रभासे हमें प्रकाशित करता रहेगा।

(६)

श्री नेमिचन्द्राचार्य ।

सिद्धांताम्भोधिचन्द्रः प्रणुतपरमदेशीयगणाम्भोधिचन्द्रः ।
स्याद्वादाम्भोधिचन्द्रः प्रकटितनयनिक्षेपताराशिचन्द्रः ॥
एनश्चक्रौघचन्द्रः पदनुतकमलव्रातचन्द्रः प्रशस्तो ।
जीयाज्ज्ञानाब्दिचन्द्रो मुनिपकुलवियच्चन्द्रमा नेमिचन्द्रः ॥
सिद्धन्तुदयतडुग्गय णिम्मलवरणेमिचन्दकरकलिया ।
गुणरयणभूसणम्बुहिमइवेला भरदु भुअणतलं ॥

सिद्धान्तके उदयाचलसे उदित नेमिचन्द्र चन्द्रकी वचन–किरणोंसे स्पष्ट गुणरत्नभूषण चामुण्डराय समुद्रका बुद्धितट भुवनतलको पूर्ण करे।

श्रीनेमिचन्द्राचार्य सिद्धान्तके पारगामी महान् प्रतिभाशाली विद्वान् थे । अपनी असाधारण विद्वत्ताके कारण आपने 'सिद्धान्त चक्रवर्ती' पदको प्राप्त किया था ।

जीवन परिचय—

आचार्य नेमिचन्द्र नंदिसंघ और देशी गणके आचार्य थे । आपके प्रारम्भिक जीवन, जन्म स्थान, वंश तथा मातृ-पितृके संबंधमें कुछ भी ज्ञात नहीं हो सका । आपने आचार्य श्री अभयनंदि, श्री

वीरनंदि और श्री कनकनंदिको अपना गुरु माना है। इस वास्ते यह अनुमान करना कठिन है कि आपके प्रधान गुरु कौन थे संभवतः आपने सभी आचार्योंसे श्रुतज्ञान प्राप्त किया हो।

महाप्रतापी राजा चामुंडराय आपके अनन्य भक्त थे, आचार्य महोदयने आपके लिये गोमटसार ग्रंथकी रचना की थी।

अनुमानतः आपका जन्म दक्षिण भारतमें होना समझा जाता है। दक्षिण भारतके श्रवणबेलगुल नगरमें आपका पदार्पण हुआ है और दक्षिण भारतको ही आपने अपने उपदेशका प्रधानक्षेत्र बनाया है।

समय निर्णय—

द्राविड़देशीय श्री चामुंडरायसे श्रीनेमिचन्द्राचार्यका धार्मिक संबंध विक्रम सं० ७३५ में निश्चित रूपसे रहा है। अस्तु यह, निर्विवाद है कि विक्रम सं० ७३५ में आप दक्षिण प्रांतकी भूमिको अपने चरणकमलोंसे पवित्र करते थे। आचार्य महोदयने गोम्मटसार ग्रंथके अंतमें चामुंडरायके संबंधमें स्वयं कहा है। (ऊपरकी गाथा)

भुजबलि चरितमें आपके सम्बन्धमें कुछ विवरण दिया है उसे हम यहां प्रकट करते हैं—

द्रविड़ देशमें मथुरा (मदुरा) नामक नगरके राजा गंग—वंश तिलक राजमल्ल थे, जो श्री सिंहनंदि आचार्यके चरण कमल सेवक थे। उनके प्रधान मंत्री श्री चामुंडराय थे। एक दिन महाराजा राजमल्ल श्री चामुंडके साथ राजसभामें बैठे थे। उन्हें एक श्रेष्ठी द्वारा पोदनपुरके निकट श्री 'गोम्मट' स्वामीकी विशाल मूर्तिका परिचय प्राप्त हुआ।

श्री चामुंडरायने अपनी माता कालिकासे उक्त मूर्तिके सम्बन्धमें विदित किया। और प्रतिज्ञा की कि जब तक मैं श्री बाहुबलिकी उस मूर्तिके दर्शन नहीं करूंगा तब तक दुग्ध पान नहीं करूंगा। उस समय पोदनपुरका मार्ग अत्यंत विषम था। कुक्कुट सर्प उस मार्गको आच्छादित किए हुए था, अस्तु कुछ समयको उन्हें अपना विचार स्थगित करना पड़ा। कुछ समय पश्चात् श्री नेमिचन्द्राचार्यसे चामुण्डरायका अधिक सम्पर्क हो गया। उनकी तप शक्ति और विद्वत्तासे वे अत्यन्त प्रभावित हुए। आचार्य महोदय द्वारा गोम्मटेश्वरकी विशाल मूर्तिकी प्रशंसा सुनकर उन्होंने उनके पवित्र दर्शनके लिए संघ सहित चलनेकी योजना की। संघ, श्रवणबेलगोलाके निकट जाकर चामुण्डरायने यात्राकी कठिनताको देखकर रुक गया। वहां रात्रिके पिछले पहरमें श्री नेमिचन्द्राचार्यको पद्मावतीदेवीने स्वप्नमें दर्शन देकर कहा—पोदनपुरका मार्ग कठिन है इस पर्वतपर रावण द्वारा स्थापित श्री बाहुबलीकी विशालकाय मूर्ति है, उसे प्राप्त कर अपनी इच्छा पूर्ण कीजिए।

प्रातःकाल चामुण्डरायने स्नान करके आचार्य महोदयके निकट उपवास धारण कर दक्षिण दिशामें खड़े होकर बाण द्वारा पर्वतको छेदकर श्री बाहुबलिकी २० धनुष ऊँची मूर्तिका उद्घाटन किया, और १००८ कलशोंसे अभिषेक किया। शक संवत् ६०० (वि० सं० ७३५) में श्री चामुण्डरायने चैत्र शुक्ला पंचमी रविवारके दिन श्रवणबेलगुल नगरमें श्री गोम्मटस्वामीकी प्रतिष्ठा की, और श्री नेमिचन्द्राचार्यके चरणोंकी साक्षी सहित ९६ हजार मोहरोंके गांव श्री

गोम्मटस्वामीके उत्सव, अभिषेक और पूजन आदिके लिए दान किए।

मदुरा नगरमें प्रवेश कर चामुण्डरायने राजा राजमल्लको यह सब विदित किया। महाराज राजमल्लदेवने श्री नेमिचन्द्रस्वामीके निकट डेढ़ लाख दीनारोंके गांव श्री गोम्मटस्वामीकी सेवाके लिए प्रदान किए, और चामुण्ड मंत्रीसे प्रसन्न होकर उन्हें जैनमतकी प्रभावनार्थ 'राय' पद प्रदान किया।

विशेष परिचय—

श्री नेमिचन्द्राचार्य अत्यंत प्रभावशाली और सिद्धान्त शास्त्रके अद्वितीय ज्ञाता थे तथा सिद्धान्त शास्त्रके अतिरिक्त आप गणित शास्त्रके अपूर्व विद्वान् थे। ज्योतिष शास्त्रमें भी आपका अच्छा प्रवेश था।

आपके महान् विद्वत्तापूर्ण ग्रंथोंको देखकर आपके सर्व विषयोंमें निष्णात होनेका प्रमाण मिलता है।

शास्त्रोंके अपूर्व ज्ञाता होनेके अतिरिक्त आपका व्यक्तित्व महान् था। चामुंडराय जैसे व्यक्ति आपके अत्यंत भक्त थे। आचार्य महोदयके प्रभावसे ही चामुंडरायने गोम्मटस्वामीकी मूर्तिका उद्घाटन किया था। जिनके नामसे प्रभावित होकर आचार्य नेमिचन्द्रजीने 'गोम्मटसार' जैसे महान् सिद्धान्त ग्रंथकी रचना की थी। आपने अपने सभी ग्रन्थोंकी रचना प्राकृत भाषामें की है। जैन समाजमें आपके ग्रंथ अत्यंत आदर और श्रद्धाकी दृष्टिसे देखे जाते हैं।

ग्रन्थ रचना—

१ गोम्मटसार, २ त्रिलोकसार, ३ लब्धिसार, ४ क्षपणासार, ५ द्रव्यसंग्रह ये ग्रन्थ आपके अत्यंत प्रसिद्ध हैं।

१–गोम्मटसार—इसके २ भाग हैं–एक जीवकांड, दूसरा कर्मकांड । इसमें सिद्धान्त सम्बन्धी जीवस्थान, क्षुद्रबंध, बंधस्वामी, वेदनाखंड, वर्गणाखंड इन पांच विषयोंका वर्णन है ।

जीवकांडमें जीवकी अनेक अशुद्ध अवस्थाओं और भावोंका विस्तृत वर्णन है । जीवके भेद और उनके स्वभावोंका वर्णन अत्यन्त सूक्ष्म रूपसे किया गया है ।

कर्मकांडमें कर्म प्रकृति, उसके परिणाम, उदय, बन्ध और सम्पूर्ण भेदोंकी विस्तृत विवेचना की गई है ।

इस ग्रंथपर चार टीकाएं उपलब्ध हैं—

१–श्री चामुण्डराय द्वारा लिखित कर्णाटक वृत्ति ।

२–श्री केशववर्णी द्वारा रचित संस्कृत टीका ।

३–श्री अभयचंद्र सिद्धान्त चक्रवर्ती द्वारा रचित 'मंदप्रबोधिनी टीका ।

४–पं० टोडरमलजी द्वारा रचित 'सम्यग्ज्ञानचंद्रिका' हिंदी टीका ।

श्री० पं० खूबचन्द्र जैन शास्त्री कृत हिन्दी अनुवाद सहित यह ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका है । यह जैन सिद्धान्तका सर्वोपरि ग्रंथ है । जैन समाजमें यह अत्यन्त गौरवप्रद और सम्माननीय है । उच्च कोटिकी परीक्षाओंमें इसका सन्निवेश है ।

बृहद् द्रव्यसंग्रह—

इस ग्रन्थमें जीवादि छह द्रव्योंका वर्णन अत्यन्त स्पष्टतासे किया गया है । वर्णन संक्षिप्त होने पर भी पूर्ण और गंभीर है । इसमें ३ अधिकार और ५८ गाथाएं हैं ।

इस ग्रन्थ पर तीन हजार श्लोकोंमें श्रीब्रह्मदेवजीने बृहत् संस्कृत टीकाका निर्माण किया है ।

द्रव्यसंग्रहका पठन सभी विद्यालयोंमें होता है। हिन्दी अनुवाद सहित यह ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका है।

त्रिलोकसार—

इस ग्रन्थमें ऊर्द्ध, मध्य, अधोलोकका विस्तृत वर्णन क्षेत्रों तथा उसके अन्तर्गत सभी स्थानोंका वर्णन क्षेत्र गणनाके साथ२ दिया है। जैन भूगोलका यह सुन्दर ग्रन्थ है। यह हिन्दी टीका सहित प्रकाशित हो चुका है।

(७)

शाकटायनजी ।

कुतस्त्या तस्य सा शक्तिः पाल्यकीर्तिर्महौजसः ।
श्रीपदश्रवणं यस्य, शाब्दिकान्कुरुते जनान् ॥

" उस महातेजस्वी पाल्यकीर्तिकी शक्तिका क्या वर्णन किया जाय जिसका 'श्रीपद श्रवण' ही लोगोंको शाब्दिक या व्याकरणज्ञ बना देता है । "

प्रसिद्ध जैनाचार्य शाकटायनजी व्याकरणके महान् विद्वान् थे । आपका व्याकरण सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है । व्याकरण शास्त्रके पारगामी होनेके अतिरिक्त आप सिद्धांतके भी अच्छे ज्ञाता थे । आप दिगंबर और श्वेतांबर दोनों सम्प्रदायके माननीय आचार्य थे । आपका दूसरा नाम पाल्यकीर्ति था ।

जीवन वृत्त—

आपकी जीवनीके संबंधमें कुछ भी ज्ञात नहीं होसका । आपके परिचयके संबंधमें केवल इतना ही कहा जा सकता है कि आप यापनीय संघके प्रसिद्ध आचार्य थे । यापनीय संघ दिगंबर और श्वेतांबर दोनों सम्प्रदायोंके मध्यका एक सम्प्रदाय था जो कुछ समय

बादमें नष्ट होगया। आपके गुरुका नाम अर्ककीर्ति कहा जाता है जो यापनीय संघके थे।

समय—

शाकटायनका समय विक्रमकी आठवीं शताब्दी माना जाता है, शाकटायनजीने अमोघवृत्तिका निर्माण किया है इसमें 'अदहदमोघवर्षोऽरातीनि' शब्द आया है जिसका यह अर्थ होता है कि अमोघवर्षने शत्रुओंको जला दिया—इतिहासकारोंका कथन है कि एक समय गुजरातके माण्डलिक राजा एकाएक बिगड़कर अमोघवर्षके विरुद्ध हो गए, उन्होंने विद्रोह कर दिया और युद्धके लिए कटिबद्ध हो गए। अमोघवर्षने उन पर चढ़ाई कर दी और उन्हें पराजित कर नष्ट भ्रष्ट कर दिया।

अमोघवर्ष वि० सं० ७७१में सिंहासनपर बैठे हैं, इससे ज्ञात होता है कि आचार्य महोदयने अमोघवृत्तिकी रचना ७३६ और ७८९ के मध्य समयमें की होगी, और यही उनका समय होना चाहिए। अमोघवर्ष जैन विद्वानोंके आश्रयदाता रहे हैं उनके जैन धर्म और साहित्यिक स्नेहके प्रति सहानुभूति रखते हुए शाकटायनजीने इस टीकाका नाम अमोघवृत्ति रखा होगा।

योग्यता—

आचार्य शाकटायनजी बड़े भारी तार्किक और सिद्धान्तके ज्ञाता थे। व्याकरण शास्त्रके तो आप उद्भट विद्वान् थे। बड़े २ आचार्योंने आपके शब्द शास्त्रकी प्रशंसा की है। शाकटायन प्रक्रिया संग्रहके मंगलाचरणमें पाल्यकीर्तिको मुनीन्द्र और जिनेश्वर संबोधित किया है।

चिन्तामणि-टीकाके कर्ता यक्षवर्माने आपको सकल ज्ञान साम्राज्य-पदमासवान् माना है। चिदानन्द कविने मुनि वंशाभ्युदयमें लिखा है कि आचार्य पाल्यकीर्तिने बुद्धिरूपी मन्दराचलसे श्रुतरूपी समुद्रका मंथनकर यशके साथ व्याकरण रूपी अमृत निकाला, वे जयवंत हों।

अन्य आचार्योंने उन्हें 'श्रुतिकेवलि देशीयाचार्य' लिखा है इन सब बातोंसे ज्ञात होता है कि आप श्रुतज्ञानके महान् ज्ञाता थे।

ग्रन्थ रचना—

(१) शब्दानुशासन—यह व्याकरणका महान् ग्रन्थ है। यह प्रमाणमें थोड़ा होनेपर भी सुखसाध्य और सम्पूर्ण है।

अनेक विद्वानोंने इसपर टीकाएं रची हैं जिनमें ७ टीकाएं अबतक प्राप्त होचुकी हैं।

१ अमोघवृत्ति—यह आचार्य महोदयने स्वयं लिखी है और सबसे बड़ी टीका है।

२ शाकटायन न्यास—इसके रचयिता प्रभाचन्द्राचार्य हैं।

३ चिंतामणि टीका—इसके कर्ता यक्षवर्मा हैं।

४ मणिप्रकाशिका—इसके रचयिता अजितसेनाचार्य हैं।

५ प्रक्रिया संग्रह—यह सिद्धान्त कौमुदीके ढंगकी है। इसके रचयिता अभयचंद्राचार्य हैं।

६ शाकटायन टीका—इसके कर्ता भावसेन त्रैविद्यदेव हैं।

७ रूपसिद्धि—यह लघुकौमुदीके समान छोटी टीका है। इसके कर्ता दयापाल मुनि हैं।

(२) अमोघ वृत्ति—यह शाकटायनकी पूर्ण टीका सूत्र रूपमें है जिसकी संख्या १८००० है।

(३) स्त्री मुक्ति, केवलि भुक्ति प्रकरण—इसमें स्त्री मुक्ति और केवली आहार पर ३४ कारिकाएं हैं, इसमें आपने अपूर्व तर्क और सिद्धांतों द्वारा विषयका बड़ी विद्वत्तापूर्ण प्रतिपादन किया है जिसका खण्डन आचार्य प्रभाचंद्रजीने प्रमेयकमलमार्तंड और न्यायकुमदचंद्र नामक ग्रंथोंमें बड़े अच्छे ढंगसे किया है।

आचार्य शाकटायनने व्याकरण शास्त्रकी रचना करके अपना नाम अमर बनाया और जैन साहित्यको महान कृति प्रदान की है।

(८)

आचार्य विद्यानन्द ।

आचार्य विद्यानन्द, तर्कशास्त्रके प्रकांड विद्वान् और महाकवि थे। आप न्यायशास्त्रमें पारंगत थे। जैन साहित्यमें आपका स्थान अत्यंत गौरवपूर्ण है। वास्तवमें आप तर्क चूडामणि थे। आप अकलंक देवके उत्तरवर्ती और उनके ग्रन्थोंके विशिष्ट अभ्यासी और तलस्पर्शी टीकाकार हैं। जैन न्यायके आप व्यवस्थापक थे।

कुछ विद्वानोंका मत है कि विद्यानन्द और पात्रकेशरी एक ही विद्वान् हैं, किन्तु प्रमाणोंसे यह निर्विवाद सिद्ध हो चुका है कि ये दोनों आचार्य भिन्न भिन्न हैं।

प्राथमिक जीवन—

अन्य आचार्योंकी तरह श्री विद्यानन्दजीका जन्मस्थान और समय विवादास्पद है। किन्तु अनुमानसे आपका स्थान दक्षिण भारत ही समझा जाता है। आचार्य महोदयने अपने युक्त्यनुशासनालङ्कार नामक ग्रन्थके अन्तिम श्लोकमें 'सत्यवाक्य' नामक पदका प्रयोग किया है। यह उपाधि गंगवाडि प्रदेशके गंगवंशी राजा राजमल्लसे प्राप्त थी। इससे ज्ञात होता है कि आचार्य महोदयने उनके लिए ही सत्य-वाक्याधिपका प्रयोग किया है और उनका निवास गंगवाडि प्रदेशमें रहा है।

विद्यानंदिजीके वंश, जाति तथा इनके गुरु आदिके सम्बन्धमें कुछ ज्ञात नहीं होता क्योंकि न तो इन्होंने अपनी गुरुपरम्परा लिखी है और न शिलालेखोंमें ही कहीं इनका उल्लेख प्राप्त होता है।

समय निर्णय—

आचार्य महोदयका समय भी अब तक निश्चित नहीं होसका। इस सम्बन्धमें केवल इतना ही कहा जा सकता है कि राजा राजमल्ल सत्यवाक् विजयादित्यके पुत्र थे। और वह सन् ८१६ ई० के लगभग राज्याधिकारी हुए। अस्तु, विद्यानंदिजी नवीं शताब्दिके विद्वान् होना चाहिए।

युक्त्यनुशासनमें आचार्य धर्मकीर्तिके वाक्य उद्धृत होनेसे आचार्य विद्यानंदिजीका समय धर्मकीर्तिके बाद वि० सं० ८०५ से पहिले और ८१० के बाद होना चाहिए।

विद्यानंदि चरित—

कनड़ी ग्रन्थ 'राजावलीकथे' में विद्यानंदिजीकी एक कथा है जिसका सारांश निम्न प्रकार है—

विद्यानंदि कर्णाटक प्रान्तके रहनेवाले एक जैन ब्राह्मण थे। ये युवावस्थामें दारिद्र्यसे अत्यंत संतापित थे। एक समय अंतिम चोलराजाके दरबारमें इन्होंने त्रिमूर्तिके पात्र रूपमें अत्यंत कलापूर्ण अभिनय किया। इनका अभिनय देखकर जनता मंत्रमुग्ध रह गई। राजा इनके अभिनयसे अत्यंत आकर्षित हुए। इन्हें एकबार और भी जैन मुनिके पात्र रूपमें जनताके सन्मुख आना पड़ा। जैन जनता अपने परमपूज्य मुनिका स्वांग देखना सहन न कर सकी। उसने इसे अपना अपमान समझा और इसके

प्रायश्चित स्वरूप विद्यानंदिजीको मुनिधर्म ग्रहण करनेका आग्रह किया।

विद्यानंदिने मुनिधर्म तो ग्रहण किया, किन्तु वे अपनी जन्मभूमि परित्याग कुरु जांगल देशमें रहने लगे। एक बार भ्रमण करते हुए उन्हें किसी सरोवर तटपर महान् निधिके दर्शन हुए उसी समय अचानक विद्यादेवराय नामक एक व्यक्ति वहां आया जिसने उस निधिको लेना चाहा, किन्तु उस निधिके रक्षकदेवने उसे रोकते हुए कहा कि तुम यह निधि विद्यानंदिको प्रसन्न करके ही ले सकते हो तब उस व्यक्तिने अपनी भक्ति द्वारा विद्यानंदिको प्रसन्न किया और संपूर्ण निधि ग्रहण की। उसे विद्यानंदिके ऊपर बड़ी श्रद्धा हुई और उन्हें अपने साथ ले जाकर उनकी स्मृतिमें विद्यानगर स्थापित किया।

गुण गरिमा—

विद्यानंदिजीकी तर्कशक्ति चमत्कारिणी थी। देवेन्द्रकीर्तिजीने उन्हें 'तार्किकचूड़ामणि' और 'कवि' लिखा है। उस समय कविकी उपाधि अत्यंत महत्वशाली थी। यह उच्चकोटिके प्रतिभाशाली विद्वानोंको ही प्राप्त होती थी। वादिराजजीने उन्हें संसारके अनुपम रत्नोंसे देदीप्यमान अलंकारकी उपमा दी है।

विद्यानंदिजीने कर्णाटक आदि देशोंमें भ्रमण कर धर्मप्रभावनाको विस्तृत किया था और अपने त्यागमय जीवनको सफल बनाया था।

ग्रन्थ रचना—

स्वामी विद्यानंदिजी द्वारा रचित निम्न ग्रन्थ अत्यंत प्रसिद्ध हैं—

अष्टसहस्री—यह समंतभद्राचार्यके आप्तमीमांसा नामक ग्रंथपर अकलंकदेव द्वारा रचित अष्टशतीकी एक महत्वपूर्ण व्याख्या टीका

है। न्यायशास्त्रका यह अत्यंत उच्चकोटिका ग्रंथ है। आपका अगाध और तलस्पर्शी पांडित्य इस ग्रंथके पदपद परसे विदित होता है। इस टीका द्वारा अकलंकदेवकी सूक्ष्म तथा असाधारण प्रतिभाको दर्पणकी तरह स्पष्ट कर दिया है। अष्टसहस्रीमें आचार्य महोदयने अष्टशतीके मंतव्योंकी विशाल एवं विस्तृत व्याख्या की है जिससे आपके प्रत्येक दर्शनके अपूर्व अध्ययनका परिचय प्राप्त होता है। इसमें न्यायशास्त्रकी अकाट्य युक्तियों द्वारा मार्मिक तर्क पूर्ण विवेचन किया गया है।

युक्त्यनुशासन—यह ग्रन्थ आचार्य महोदयकी अपूर्व प्रतिभाका परिचायक है। इसमें प्रबल युक्तियों द्वारा जैन दर्शनकी महत्ताका प्रदर्शन किया गया है। प्रत्येक युक्ति अखंड, अकाट्य और तर्कपूर्ण है।

प्रमाण परीक्षा—यह ग्रंथ अकलंकदेवके प्रमाणसंग्रहादि प्रकरणका आश्रय लेकर संग्रहित किया गया है। इसमें प्रमाणका निरूपण अच्छी तरह किया है। सम्यग्ज्ञानको प्रमाण मानकर उसके भेद प्रभेद, प्रमाणका विषय तथा फल आदिकी सुन्दर और विस्तृत व्याख्या की गई है।

पत्र परीक्षा—इसमें पत्र लक्षणोंकी समालोचना की गई है और जैनदृष्टिसे पत्रका बहुत सुन्दर लक्षण किया है तथा प्रतिज्ञा और हेतु इन दो अवयवोंको अनुमानाङ्ग बतलाया है।

तत्वार्थ श्लोकवार्तिक—आचार्य उमास्वामिके तत्वार्थसूत्रकी यह विस्तृत पद्यात्मक टीका है। इसमें आचार्य महोदयने अपनी दार्शनिक विद्याका पूरा खजाना खोलकर रख दिया है, जिससे प्रत्येक दार्शनिक उसका रसास्वादन कर तृप्ति प्राप्त कर सकता है। सम्पूर्ण

ग्रन्थमें गहन विचारणा और महान् तार्किकता व्याप्त है। मीमांसा दर्शनके नियोग भावनादिपर उनके सूक्ष्म एवं विशाल पांडित्यकी प्रखर किरणें अपना तीक्ष्ण प्रकाश डाल रही है। न्यायदर्शन, तथा बौद्ध दर्शनकी गम्भीर युक्तिपूर्ण समालोचना की गई। इसमें स्वामी विद्यानंदिके अनेक मुखी पांडित्य और सूक्ष्म प्रज्ञताके दर्शन मिलते हैं। जैन तार्किकोंमें यह ग्रन्थ अपना उन्नत स्थान प्राप्त किए हुए है।

आप्तपरीक्षा—इस ग्रन्थमें आचार्य महोदयने आप्तकी सुन्दर और निष्पक्ष व्याख्या की है इसमें न्याय शास्त्रको अत्यंत सरलतासे प्रविष्ट किया है। छात्रोंके लिए यह अत्यंत उपयोगी और प्रभावपूर्ण ग्रन्थ है।

सत्य शासन परीक्षा—विद्वानोंने इस ग्रंथकी खोज करके इसे आचार्य महोदय द्वारा रचित सिद्ध किया है। इसमें जैन शासनका महत्व प्रदर्शित किया गया है।

(९)

आचार्य माणिक्यनंदि।

गंभीरं निखिलार्थगोचरमलं, शिष्यप्रबोधप्रदं।
यद्व्यक्तं परमद्वितीयमखिलं, माणिक्यनंदिप्रभो॥

आचार्य माणिक्यनंदिका हमें कुछ भी परिचय प्राप्त नहीं हो सका। यद्यपि उनका परिचय आज प्राप्त नहीं है, लेकिन उनके द्वारा रचित एक मात्र 'परीक्षामुख' नामक ग्रंथसे उनकी अखंड विद्वत्ता देखकर हमारा मस्तक श्रद्धासे नम्र होजाता है। आचार्य महोदय न्यायशास्त्रके उच्चकोटिके विद्वान थे। आपने न्याय समुद्रमें प्रवेश करके उसका पूर्ण परिचयके साथ मंथन किया था।

अकलंकदेव न्यायशास्त्रके प्रतिष्ठापक समझे जाते हैं। अकलंकदेवके संबंधमें 'प्रमाणमकलंकस्य' तथा 'अकलंकन्यायात्' वाक्य अत्यंत प्रसिद्ध हैं। आचार्य प्रभाचंद्रजीका कथन है कि आचार्य माणिक्यनंदिजीने अकलंकदेवके संपूर्ण न्याय ग्रंथोंका बड़ी सूक्ष्मतासे अध्ययन किया है प्रमेयरत्नमालाके रचयिता आचार्य अनंतवीर्यजीने इस संबंधमें कहा है—

अकलंकवचोऽम्भोधे रुद्धे येन धीमता।
न्यायविद्याऽमृतं तस्मै नमो माणिक्यनन्दिने॥

इस श्लोकपरसे आपके न्याय शास्त्रका अनुभव संबंधी परिचय प्राप्त होता है। आपकी न्याय कथनशैली परिमार्जित, और गंभीर थी। आपकी न्यायशैलीका अध्ययन करके अनेक विद्वानोंने सूत्रग्रंथ लिखे हैं।

विद्वानोंकी दृष्टिमें आपका समय आठवीं नवमी शताब्दि माना जाता है।

परीक्षामुख—यह ग्रंथ न्याय विषयमें प्रवेश करनेके लिए 'मुखद्वार' का कार्य करता है। इस एक ग्रंथसे ही न्यायशास्त्रका काफी ज्ञान प्राप्त होजाता है ।

सम्पूर्ण ग्रन्थ सूत्ररूपमें है। सूत्र बहुत ही सरल, सरस और नपे तुले हैं, प्रत्येक सूत्र बहुत ही गम्भीर तलस्पर्शी और अर्थगौरवसे पूर्ण है।

इस ग्रन्थमें वस्तुकी यथार्थताका स्पष्ट प्रदर्शन किया गया है। इसके अध्ययनसे यह ज्ञात हो जाता है कि प्रमाणिकता, न्याय और सत्य किधर है । न्याय जैसे गम्भीर विषयको इस छोटेसे ग्रन्थ द्वारा बड़ी सरलतासे समझाया गया है।

ग्रंथमें यह एक विशेषता है कि आचार्य महोदयके कथनसे स्वमत स्थापनके साथ २ परमतका अपने आप निराकरण होजाता है। प्रत्येक विषयको उदाहरण द्वारा बड़ी सरलतासे समझाया गया है ।

इसमें ६ समुद्देश हैं—१ प्रमाण स्वरूप समुद्देश, २ प्रत्यक्ष समुद्देश ३ परोक्ष समुद्देश, ४ विषय समुद्देश, ५ फल समुद्देश, ६ आभास समुद्देश, कुल सूत्र संख्या २२१ है ।

परीक्षामुख पर आचार्य प्रभाचन्द्रजीने प्रमेयकमलमार्तंड नामक वृहत् संस्कृत टीकाकी रचना की है और आचार्य अनंतवीर्यजीने प्रमेयरत्नमाला नामक टीका लिखी है ।

पंडित जयचंदजी छावड़ाने इसकी भाषा टीका की है जो प्रकाशित हो चुकी है ।

परीक्षामुख सभी विद्यालयोंकी न्याय परीक्षामें संमिलित है ।

(१०)

वीरसेनस्वामी ।

वीरसेनस्वामी अपने समयके महान् आचार्य थे। आप सिद्धान्त, छन्द, ज्योतिष, व्याकरण और प्रमाण-शास्त्रोंमें अत्यंत निपुण थे। आपकी विद्वत्ता अगाध थी। आपने धवल और जयधवल ग्रन्थोंका निर्माण करके जैन समाजका जो कल्याण किया है वह चिरस्मरणीय रहेगा।

जीवन परिचय—

आचार्य वीरसेनके जीवन सम्बन्धमें कुछ भी परिचय प्राप्त नहीं हो सका। श्रुतावतार कथा द्वारा आपका केवल निम्न परिचय मिल सका है।

आचार्य वीरसेन सिद्धान्तशास्त्रके पारगामी एलाचार्यके शिष्य थे। गुरु महाराजकी आज्ञासे चित्रकूट ग्रामको त्याग कर माट ग्राममें आये। वहां आनतेन्द्रके बनवाए हुए जिनमंदिरमें बैठकर उन्होंने ग्रंथोंका निर्माण किया है।

समय निर्णय—

आपका जन्म विक्रम संवत् ८०० के लगभग निश्चित हुआ है।

विद्वत्ता—

वीरसेनस्वामी सिद्धान्तशास्त्रके अद्वितीय विद्वान् थे। जिनसेन-स्वामीने उन्हें वादिमुख्य, लोकवित्, वाग्मी और कविके अतिरिक्त श्रुतकेवलि तुल्य कहा है। उनकी चमत्कारिणी बुद्धि समस्त विषयोंमें प्रवेश करनेवाली थी, इसलिए विद्वान् उन्हें सर्वज्ञकी संज्ञासे सम्बोधित करनेका साहस करते थे।

श्री गुणभद्राचार्य उन्हें समस्त वादियोंको त्रस्त करनेवाले और ज्ञान तथा चारित्रसे निर्मित हुआ मानते थे।

द्वितीय जिनसेनने उन्हें कवि चक्रवर्तीके नामसे सम्बोधित किया है।

इस प्रकार वीरसेनस्वामी चमत्कृत प्रतिभाशाली और सिद्धान्तके समर्थ ज्ञाता थे। आचार्य जिनसेन, दशरथगुरु व आचार्य विनयसेन ये आपके शिष्य थे।

ग्रंथ रचना—

धवला टीका–पूर्वोके अन्तर्गत 'महाकर्म प्रकृति' नामक पाहुडके चौबीस अधिकार थे। 'आचार्य पुष्पदन्त और भूतबलिने इनका अध्ययन करके छह खण्डोंमें–षट्खण्डागमकी सूत्ररूपसे रचना की है। धवला टीकामें इसके पांच खण्डोंकी व्याख्याकी है। यह ग्रंथ ७२ हजार श्लोकोंमें पूर्ण हुआ है। इसकी भाषा संस्कृत और प्राकृत मिश्रित है। यह ग्रंथ हिन्दी टीका सहित प्रकाशित हो रहा है। अबतक इसके ६ खंड प्रकाशित होचुके हैं।

जयधवला टीका–श्री गुणधराचार्यके कषाय-प्राभृत सिद्धांतकी यह विस्तृत टीका है। यह टीका ६० हजार श्लोकोंमें समाप्त हुई है।

इसके प्रारंभकी २० हजार श्लोकोंमें श्री वीरसेनस्वामीने टीका की है। शेष टीका आपके प्रधान शिष्य श्री जिनसेनस्वामीने ४० हजार श्लोकोंमें की है। यह ग्रंथ भी प्रकाशित हो रहा है।

उपरोक्त दोनों ग्रंथ साहित्यकी अनुपमनिधिके रूपमें सुरक्षित हैं।

सिद्ध-भूपद्धति टीका—इस ग्रंथका परिचय उत्तर पुराणकी प्रशस्ति द्वारा प्राप्त हुआ है। यह क्षेत्र गणित संबंधी अनुपम ग्रंथ होगा। यह ग्रंथ अभी अप्राप्य है।

वीरसेन स्वामी महान् सिद्धांत ग्रन्थोंकी रचना करके जैन समाजको चिर उपकृत बना चुके हैं। आपके ग्रन्थ जैनसमाजमें बड़ी पूज्य दृष्टिसे देखे जा रहे हैं।

(११)
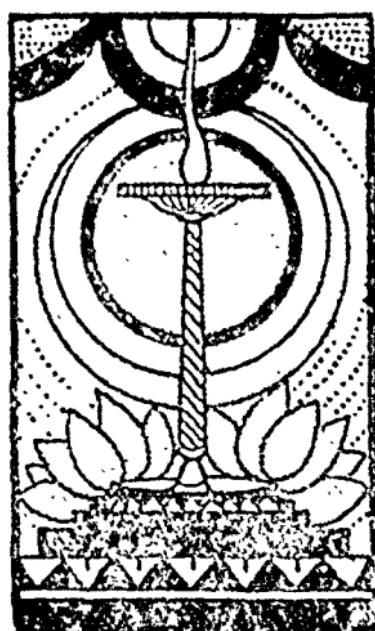
आचार्य जिनसेन ।

हरिवंशपुराणके कर्ता आचार्य जिनसेनके नामसे जैन समाज भलीप्रकार परिचित है। आप काव्य शास्त्रके अच्छे विद्वान थे। आदि-पुराणके रचयिता भगवज्जिनसेनाचार्यसे आप भिन्न आचार्य हैं।

जीवन परिचय—आचार्य जिनसेन पुन्नाट संघके आचार्य थे पुन्नाट कर्नाटकका प्राचीन नाम है। यह संघ कर्नाटक और काठिया-वाड़के निकट २०० वर्ष तक रहा है। इस संघपर गुजरातके राजवंशोंकी विशेष श्रद्धा और भक्ति रही है। अनेक राजाओंने भक्तिसे प्रेरित होकर जैन मुनियोंको दान देकर तथा उनका आदर करके अपनी श्रद्धा प्रकट की है। उनके बहुतसे मंत्री और सेनापति जैनधर्मके उपासक रहे हैं। आपके गुरुका नाम आचार्य कीर्तिषेण और दादागुरुका नाम जिनसेन था।

समय—हरिवंशपुराणके अंतिम सर्गमें आचार्यमहोदयने पुराणका रचना काल लिखा है। उसमें बतलाया है कि वर्द्धमानपुरमें शक संवत् ७०५ में इस महान ग्रंथकी रचना की है। वर्द्धमानपुर काठियावाड़का प्रसिद्ध नगर वढ़माण निश्चित किया गया है। उस समय उत्तरदिशाकी इन्द्रायुद्ध राजा, दक्षिणकी कृष्णका पुत्र श्रीवल्लभ, पूर्वदिशाकी अवन्ति

शूर वत्सराज और पश्चिमके सौराष्ट्रकी वीर जय वराह रक्षा करता था तब इस ग्रंथकी रचना हुई। इसवास्ते आचार्य जिनसेनजी विक्रमकी ०, वीं सदीके आचार्य समझे जाते हैं।

हरिवंशपुराणकी रचना वर्द्धमानपुरकी वसतिमें नन्नराजके बनवाये हुए जैन मंदिरमें रहकर की गई है। नन्नराज कर्णाटक वंशके राष्ट्रकूट वंशी राजपुरुष कहे जाते हैं।

उस समयके जैन मुनि प्रायः जैन मंदिरोंमें ही रहते थे। आचार्य जिनसेनने भी पार्श्वनाथ मंदिरमें ही ग्रंथ निर्माण किया था। अपने ग्रंथमें उन्होंने उस समयके समीपवर्त्ती गिरनार पर्वतकी सिंहवाहिनी अंबादेवीके मंदिरका भी वर्णन किया है जो विघ्नोंकी नाश करनेवाली कहलाती थी।

विद्वत्ता—

आचार्य जिनसेनजी बहुश्रुति विद्वान थे। आपका जैन सिद्धान्त सम्बन्धी ज्ञान बहुत बढ़ा चढ़ा था। कथा साहित्यके अतिरिक्त भूगोल तथा इतिहासके आप अच्छे ज्ञाता थे। आपका हरिवंश पुराण, कथा, भूगोल, इतिहास और सिद्धान्तसे परिपूर्ण है। इस एक ग्रन्थके अध्ययनसे आपकी सरस, सरल और सर्व जनहितैषी काव्य कलाका परिचय प्राप्त हो जाता है।

ग्रंथ रचना—

हरिवंशपुराण—अत्यंत प्रसिद्ध और प्राचीन ग्रंथ है। जैन समाजके अत्यंत प्रसिद्ध पद्मपुराणके बाद सभी कथाग्रन्थोंसे यह प्राचीन और विशद है। इसमें ६६ सर्ग और बारह हजार श्लोक हैं, अधिकांश ग्रन्थ अनुष्टुप छन्दोंमें है। कुछ सर्गोंमें कहीं द्रुत विलंबित, वसंततिलका

और शार्दूलविक्रीड़ित छन्दोंका भी प्रयोग किया गया है। इसमें बाईसवें तीर्थंकर भगवान् नेमिनाथका चरित विशदरूपसे वर्णित है। इसके अतिरिक्त चौवीस तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ति, ९ नारायण, बलभद्र, प्रति नारायण आदि त्रेसठ शलाका पुरुष और सहस्रों अन्य राजाओं तथा विद्याधरोंका चरित्र चित्रित किया गया है।

चरित्र चित्रणके अतिरिक्त हरिवंशपुराणमें उर्द्धलोक, मध्यलोक, अधोलोकका विस्तृत वर्णन है। जीव अजीवादिक द्रव्योंका भी सुन्दर ढंगसे निरूपण है। स्थान२ पर जैन सिद्धांतोंका भी कथन है।

हरिवंश पुराणके ६६ वें सर्गमें महावीर भगवानसे लेकर, लोहाचार्य तककी आचार्य परम्पराका अविच्छिन्न रूपसे उल्लेख किया है। ६२ वर्षमें तीन श्रुतकेवली, १०० वर्षमें पांच श्रुतकेवली, १८३ वर्षमें ११ दश पूर्वपाठी, २२० वर्षमें पांच ११ अंगधारी, ११८ वर्षमें चार अंगधारी, इस तरह वीर निर्वाणसे ६८३ वर्ष बाद तककी गुरु परम्पराका वर्णन है। यह गुरु परम्परा अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस ग्रंथका हिन्दी अनुवाद होकर उसके कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। जैन समाजमें इसका बड़ा आदर है।

(११)

महाकवि धनंजय ।

अनेकभेदसंधानाः खनंत हृदये मुहुः ।
बाणा धनंजयोन्मुक्ताः कर्णस्येव प्रियाः कथम ॥

'अनेक (दो) प्रकारके संधान (निशाना और अर्थ) वाले और हृदयमें बार बार चुभनेवाले धनंजय (अर्जुन और धनंजय कवि) के बाण (और शब्द) कर्णको (कुन्तीपुत्र कर्णको और कानोंको) प्रिय कैसे होंगे !

जीवन परिचय—

महाकवि धनंजयने अपने संबन्धमें स्वयं कुछ नहीं लिखा है। खोज करनेपर भी विद्वानोंको आपका अधिक परिचय प्राप्त नहीं होसका। ऐतिहासिक दृष्टिसे उनके वंशके संबन्धमें कुछ भी ज्ञात नहीं होता। महा प्रतिभाशाली और द्विसंधान जैसे चमत्कारपूर्ण महाकाव्यके रचयिताके संबन्धमें कुछ भी जानकारी प्राप्त न होना हमारे लिए बड़े ही दुःखकी बात है।

काव्यके अंतिम पदसे केवल इतना ही ज्ञात होसका है कि आपके पिताका शुभ नाम वासुदेव और माताका श्रीदेवी था।

आपके विद्यागुरु श्री दशरथ थे। यह दशरथजी कौन थे, इस

संबन्धमें साधन सामग्रीके अभावके कारण कुछ नहीं कहा जासकता।

महाकवि धनंजय एक गृहस्थ थे। गृहस्थके षट्कर्मोंका पालन करते हुए आपने उच्च कोटिके साहित्यका अध्ययन किया और दो अर्थों वाले द्विसंधान महाकाव्य नामक ग्रंथका निर्माण किया जो रामायण और महाभारतकी कथाके रहस्यको उद्घाटित करता है।

समय निर्णय—

आपकी प्रशंसामें वादिराजसूरिने अपने पार्श्वनाथ चरित्रमें एक पद्य दिया है जो ऊपर उद्धृत किया जा चुका है। उसमें श्लेषरूपसे आपके द्विसंधान महाकाव्यका उल्लेख किया है जिससे स्पष्ट है कि आप शक संवत् ९४७से भी पूर्वके विद्वान् थे।

भगवज्जिनसेनके गुरु वीरसेनस्वामीने अपनी धवला टीकामें धनंजयके अनेकार्थ नाममालाका एक श्लोक उद्धृत किया है, और धवला टीका विक्रम सं० ८७३ में समाप्त हुई, इससे ज्ञात होता है कि धनंजय विक्रमकी नवमी शताब्दिसे पूर्वके विद्वान हैं। धनंजय कविने अपनी नाममालामें अकलंकका स्मरण किया है इससे भी ज्ञात होता है कि वे अकलंकदेवके पश्चात् हुए हैं, और अकलंकदेवका समय विक्रमकी ७वीं शताब्दि है, अतः कवि धनंजय आठवीं शताब्दिके विद्वान् ज्ञात होते हैं।

योग्यता—

महाकवि धनंजय असाधारण प्रतिभाशाली विद्वान् थे। काव्यकला पर आपका एकांत अधिकार था। आपकी लेखनी चमत्कारपूर्ण थी। द्विसंधान जैसे राघव-पांडवीय महा काव्यकी रचना करना आप जैसे

धुरंधर कविका ही काम था। शब्द शास्त्रके आप समुद्र थे। आपने काव्य द्वारा आपने जिस महान काव्यकलाका प्रदर्शन किया है वह अद्वितीय है। घरमें रहते हुए भी इतनी उच्चकोटिकी काव्य-कलाका प्रदर्शन करना निस्संदेह आदरकी वस्तु है। कविकी काव्य-प्रतिभा सुलझी हुई है। और वह गम्भीर तथा सरस है।

इस समय आपकी महत्वपूर्ण तीन कृतियां प्राप्त हैं—

१—द्विसंधान महाकाव्य। २—नाममाला। ३—विषापहार।

(१) द्विसंधान महाकाव्य—इस काव्यकी रचना अपूर्व है। इसका प्रत्येक श्लोक द्विअर्थक है। इस एक काव्य द्वारा ही रामायणके राम और महाभारतके पांडवोंका चरित्र चित्रित किया गया है। श्लोकके एक अर्थसे रामका चरित और दूसरे अर्थसे कृष्णका चरित चित्रित हुआ है, जो पढ़नेमें बहुत ही रुचिकर है।

यह महाकाव्य अपने ढंगका अनूठा है और इस तरहके चमत्कार-पूर्ण काव्योंमें सर्वश्रेष्ठ और सर्व प्रथम काव्य है। संपूर्ण काव्य साम्प्रदायिकतासे रहित विशुद्ध साहित्यिक है। प्रत्येक जैन काव्यमें जैनधर्म और सिद्धान्तका कुछ न कुछ वर्णन अवश्य रहता है और काव्यके नायकको अंतमें निर्वाण गमन कराया जाता है, परन्तु यह काव्य इससे बिलकुल अछूता है। इस काव्यका अनुकरण करके अनेक कवियोंने काव्य रचना की है किन्तु अपनी अद्वितीय प्रतिभाको लिए हुए यह प्रकाशपुंजकी तरह अपनी अपूर्व प्रभाको प्रदीप्त कर रहा है।

यह ग्रंथ अठारह महासर्गोंमें समाप्त हुआ है।

इस ग्रंथपर दो संस्कृत टीकायें प्राप्त हुई हैं—एक टीका आचार्य

पद्मचंद्रके शिष्य नेमिचंद्रकी पदकौमुदी नामक है, और दूसरी पर-वादिघरंट रामचन्द्रके पुत्र कवि देवाने की है। जयपुर पाटशालाके अध्यापक पं० बद्रीनाथकी संक्षिप्त टीका सहित यह ग्रंथ निर्णयसागर प्रेससे प्रकाशित होचुका है।

(२) धनंजय नाममाला और अनेकार्थ नाममाला—यह एक छोटासा शब्दकोष है जो 'गागरमें सागर' की कहावतको चरितार्थ करता है। इसमें दोसौ पद्यों द्वारा बड़े सुन्दर और सरल ढंगसे एक वस्तुके विविध पर्यायवाची नाम बतलाए हैं। इसके अन्तमें अनेकार्थ नाममाला दी गई है, जिसमें ४६ श्लोक हैं, बालकोंको कंठ करनेके लिए यह अत्यंत उपयोगी और लाभपद कोष है। प्रत्येक बालकको इसका अध्ययन कराया जाता है। यह ग्रन्थ हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित हो चुका है।

(३) विषापहार—यह एक भक्तिपूर्ण स्तोत्र काव्य है। इसमें ३९ इन्द्रवज्रा छन्दोंमें अपने उपास्यका कीर्तिगान किया गया है। भावोंकी गम्भीरता, भाषाकी प्रौढता और अनूठी उक्तियोंसे यह काव्य परिपूर्ण है। यह काव्य इतना सुन्दर और महत्वपूर्ण है कि अनेक कवियोंने इसपर सुंदर टीकायें निर्माण की हैं, कई हिन्दी टीकायें भी इसकी हो चुकी हैं।

(१३)

भगवज्जिनसेनाचार्य ।

संस्कृत साहित्यमें आपका आसन अत्यंत उच्च कोटिका है। अपनी अमर कृतियोंसे आप अपना नाम युगयुगके लिए अमर बना चुके हैं।

जीवन परिचय—

आपका जीवन परिचय इतिहासके अदृष्ट पृष्ठोंमें विलीन है। आपकी जन्मभूमिके सम्बंधमें कुछ निश्चित नहीं होसका। विद्वानोंका अनुमान है कि आपने अपने पवित्र जीवनसे मान्यखेटकी भूमिको पवित्र किया है। मान्यखेट राष्ट्रकूटवंशीय राजा अमोघवर्षकी राजधानी थी और आचार्य महोदयका अत्यधिक जीवन यहीं व्यतीत हुआ है।

विद्वानोंका मत है कि जिनसेनस्वामी या तो उच्चकुलीन राज्य-वंशी व्यक्ति हैं अथवा किसी जैन ब्राह्मण (उपाध्याय) कुलमें आपका जन्म होना चाहिए।

जिनसेनाचार्यजीके गुरुका नाम वीरसेन था। आचार्य वीरसे-नजी महा विद्वान् थे। आपने धवल और जयधवल नामक ग्रन्थोंकी टीकायें लिखी हैं। विद्वानोंने उन्हें कविना चक्रवर्ति और 'कवि वृन्दारको मुनि' के नामसे स्मरण किया है। ऐसे ही विद्वान् गुरुके शिष्य जिनसेनजी थे।

जिनसेनजीके सहयोगी शिष्य दशरथ गुरु नामक आचार्य थे जो संसारको दिखलानेवाले अद्वितीय नेत्र थे। विनयसेनजी भी सहयोगी शिष्य थे।

तत्कालीन राजा अमोघवर्ष, अकालवर्ष और सामन्त लोकादित्य आपके अत्यंत भक्त थे। आपके आग्रहसे आपके ही आचार्य महोदयने राजधानीके अतिरिक्त अन्य स्थानोंमें आपके रहनेका बहुत कम उल्लेख मिलता है।

समय निर्णय—

विद्वानोंके मतसे आपका जन्म शक संवत् ६७५ विक्रम संवत ८१० के लगभग होना चाहिए। आचार्य महोदयने अपने गुरु वीरसेनजीकी सिद्धान्त शास्त्रकी अपूर्ण टीका शक संवत् ७५९ में समाप्त की है। महापुराणकी रचना इसके पश्चात् हुई है। उस समय आचार्य महोदयकी आयु ९० वर्षके लगभग समझी जाती है। आपका अस्तित्व शक संवत् ७७० तक समझा जाता है, इस तरह आप विक्रमकी ९ वीं शताब्दीके विद्वान् माने जाते हैं।

विद्वत्ता और प्रतिष्ठा—

जिनसेनाचार्यजी साहित्य गगनके उदीयमान नक्षत्र थे। आपकी प्रतिभा और कल्पना-शक्ति निराली थी। अपने काव्यमें आपने जिन अनूठी उपमाओं और अलंकारोंका प्रयोग किया है उनने काव्य जगतमें एक चमत्कार पैदा कर दिया है। अपनी कविता निर्झरणीको आचार्य महोदयने बड़ी सुन्दरतासे प्रवाहित किया है। एक विद्वानका कथन है कि "जिन्हें भारतवर्षका सच्चा प्राचीन इतिहास जानना हो और सत्कविता

वाग्देवीका वात्सल्य भाजन बनना हो, जिन्हें उत्प्रेक्षा, उपमा, रूपकादि अलंकारोंकी निराली छटा देखनी हो, जिन्हें व्याकरणकी महत्त्वपूर्ण पद प्रयुक्तिके दर्शन करना हो, और जिन्हें जैन सिद्धान्त तथा जैन धर्मकी विजय-वैजयन्ती फहराना हो, तो उन्हें आचार्य महोदयके महापुराणका एकबार नहीं अनेकबार अध्ययन करना चाहिए।"

इस समयके महाप्रतापी और भारत-प्रसिद्ध महाराजा अमोघवर्षजी आपकी विद्वत्ता और काव्यकला पर अत्यंत मुग्ध थे। श्री गुणभद्रस्वामीने अमोघवर्ष द्वारा की गई भक्तिका प्रदर्शन करते हुए कहा है।—'महाराजा अमोघवर्ष जिनसेनस्वामीके चरणकमलोंमें अपना मस्तक झुकाकर अपनेको कृतकृत्य समझते थे और उनका सदा स्मरण किया करते थे।' महाराजा अमोघवर्षने 'प्रश्नोत्तर रत्नमाला' नामक एक पुस्तककी रचना की है उसमें महावीर स्वामीको प्रणाम किया है और लिखा है कि उन्होंने धर्मके प्रभावसे विवेक सहित राज्यका त्याग किया। इससे ज्ञात होता है कि वे महावीरके सच्चे भक्त थे और आचार्य महोदयके उपदेशके प्रभावसे वे राज्यसे विरक्त हुए थे।

काव्यके अतिरिक्त आचार्य महोदय सिद्धान्त शास्त्रके भी महान् ज्ञाता थे। आपके द्वारा रचित जयधवला टीकाका भाग सिद्धांतके गूढ़ रहस्योंसे भरा हुआ है। पार्श्वाभ्युदयके टीकाकार योगिराज पंडिताचार्यने ग्रंथ रचनाके सम्बन्धमें एक कौतुक पूर्ण कथाका उल्लेख किया है जिसे हम नीचे उद्धृत करते हैं—

कालिदास नामक कवि अपने मेघदूत नामक काव्यको श्रवण कराते हुए अमोघवर्ष राजाकी सभामें आए। उन्होंने वहांके विद्वानोंकी अवज्ञा

करते हुए अहंकार सहित अपने काव्यको सुनाया। विनयसेन मुनिको कविकी उद्दण्डता सह्य नहीं हुई। उन्होंने जिनसेन मुनिसे कविके इस अहंकारको नष्ट करनेका आग्रह किया। महाकवि जिनसेन पारदर्शी विद्वान् थे। उन्होंने मेघदूतको संपूर्णतया सुनकर उसे कंठ कर लिया और अत्यंत विनोदके साथ कहा—यह काव्य किसी प्राचीन कृतिसे अपहृत है इसीलिए अत्यंत सुंदर है। कालिदासका हृदय इससे जल उठा। उन्होंने कहा—'उस प्राचीन कृतिको सुनाइए' जिनसेनने कहा—'ग्रंथ दूरस्थ स्थानपर है उसे आठ दिनमें लाकर सुनाऊँगा' इसे सभीने स्वीकृत किया।

अपने स्थानपर आकर महाकवि जिनसेनसे पार्श्वाभ्युदय काव्यकी रचना प्रारम्भ की और उसे एक सप्ताहमें समाप्त कर आठवें दिन राज्य सभामें सुनाया। कालिदासका अहंकार नष्ट हो गया। गर्व-गलित करनेके बाद स्वामीजीने संपूर्ण रहस्य उद्घाटित करते हुए कालिदासकी रचनाको स्वतंत्र घोषित किया और मेघदूत वेष्टित पार्श्वाभ्युदयकी रचनापर प्रकाश डाला।

इस आश्चर्यजनक कथाका इतिहाससे कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं होता। केवल जन-श्रुति परसे ही इस कथाका निर्माण हुआ है, किन्तु यह निर्विवाद है कि आचार्य महोदयका पार्श्वाभ्युदय काव्य एक आश्चर्यजनक रचना रत्न है।

भगवज्जिनसेनाचार्यकी कीर्तिको चिरस्मरणीय रखनेवाले आचार्य गुणभद्र और राजा अमोघवर्ष उनके विद्वान् शिष्य थे। गुणभद्रजी अत्यंत प्रतिभाशाली थे।

एक समय जिनसेनस्वामीको ज्ञात हुआ कि अब मेरे जीवनका

अन्त सन्निकट है, और मैं महापुराणको पूर्ण नहीं कर सकूंगा। आचार्य महोदयने महापुराणके प्रथम मंगलाचरणका श्लोक बनाते समय ही अपने शिष्योंसे कह दिया था कि यह ग्रन्थ मुझसे पूर्ण नहीं होगा। मंगलाचरणके श्लोकमें जो अक्षर और शब्द योजित हुए थे उनके निमित्तसे उन विशाल बुद्धिशाली महात्माने यह भविष्यवाणी की थी जो पूर्ण हुई। एक समय जिनसेनस्वामीको ज्ञात हुआ कि अब मेरे जीवनका अन्त सन्निकट है, और मैं महापुराणको पूर्ण नहीं कर सकूंगा तब उन्होंने अपने शिष्योंको बुलाकर यह परीक्षण करना चाहा कि कौन शिष्य इतना योग्य है जो मेरे इस ग्रन्थको पूर्ण कर सकेगा? उन्होंने सामने खड़े हुए एक शुष्क वृक्षको लक्षित करते हुए अपने शिष्योंसे उसका काव्य वाणीमें वर्णन करनेको कहा। उनमेंसे एक शिष्यने कहा—'शुष्कं काष्ठं तिष्ठत्यग्रे' किन्तु विद्वान् गुणभद्रने अपनी सरसताका परिचय देते हुए कहा—"नीरस तरुरिह विलसति पुरतः" इस उत्तरसे गुरु महोदयको अत्यंत प्रसन्नता हुई और उन्हें अपने महापुराणको पूर्ण करनेका आदेश दिया।

ग्रन्थ रचना—

जिनसेनस्वामीने निम्न ग्रन्थोंकी रचना की है—१ आदिपुराण, २ पार्श्वाभ्युदय काव्य और ३ जयधवला टीकाका शेष भाग।

पार्श्वाभ्युदय—संस्कृत साहित्यमें यह अपने ढंगका एक ही काव्य ग्रन्थ है। इसमें महाकवि कालिदासके सुप्रसिद्ध काव्य मेघदूतको संपूर्णतया वेष्टित कर अनुपम काव्यकी रचना की गई है।

मेघदूत काव्यमें जितने श्लोक हैं उनके सभी चरणोंको पार्श्वाभ्यु-

दय काव्यके किसी श्लोकमें एक और किसीमें दो चरणके रूपमें ग्रहण कर आचार्य महोदयने अपनी चमत्कारिणी प्रतिभाका परिचय दिया है।

संस्कृतमें अनेक सुकवियोंने काव्यदूतोंकी रचना की, मेघदूतके श्लोकोंका अन्तिम चरण लेकर अनेक ग्रंथ रचे गये हैं। उनमें नेमिदूत, शीलदूत, हंस पादाङ्कदूत प्रसिद्ध हैं। परन्तु संपूर्ण ग्रंथको वेष्टित करनेवाला यह एक ही काव्य है, इस काव्यमें जैन तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथका चरित्र चित्रण किया गया है।

मेघदूत और पार्श्व चरित्रके कथानकमें आकाश और पृथ्वी जैसा अन्तर है। एकमें भक्ति और साधनाका रहस्य है तो दूसरेमें वियोग और शृंगारका।

इस तरहके विरोधी वर्णनसे परिपूर्ण मेघदूतके चरणोंको लेकर काव्य निर्माण करना कविकी अद्भुत क्षमताका कार्य है। इतनेपर भी पार्श्वाभ्युदयमें क्लिष्टता और निरसताका अंश भी नहीं आसका है, संपूर्ण काव्य पढ़नेपर समस्यापूर्ति जैसा आनंद प्राप्त होता है।

प्रो० के० बी० पाठकने रायल एशियाटिक सोसायटीमें एक निबन्ध पढ़ा था। उसमें इस काव्यके सम्बन्धमें कहा है—

जिनसेन अमोघवर्षके राज्यकालमें हुए हैं, उनका पार्श्वाभ्युदय काव्य संस्कृत साहित्यमें एक कौतुक-जनक उत्कृष्ट रचना है। यह उस समयके साहित्य स्वादका उत्पादक और दर्पणरूप अनुपम काव्य है। यद्यपि सर्वसाधारणकी सम्मतिसे भारतीय कवियोंमें कालिदासको प्रथम स्थान दिया है। तथापि जिनसेन मेघदूत कर्ताकी अपेक्षा अधिकतर योग्य समझे जानेके अधिकारी हैं।

योगिराज पंडिताचार्यने इस काव्यके सम्बन्धमें कहा है—

श्रीपार्श्वात्साधुतः साधुः कमठात्खलतः खलः।
पार्श्वाभ्युदयतः काव्यं न च क्वचिदपीष्यते॥

श्रीपार्श्वनाथसे बढ़कर कोई साधु, कमठसे बढ़कर कोई दुष्ट और पार्श्वाभ्युदयसे बढ़कर कोई काव्य नहीं दिखलाई देता।

इस काव्य द्वारा महाकवि जिनसेन काव्यगगनमें अपूर्व नक्षत्रकी तरह चमकते दिखलाई देते हैं। कविकुलगुरु कालिदासके ग्रन्थोंकी तरह यदि आचार्य महोदयके ग्रंथोंका अध्ययन और उनकी समालोचना की जाय तो उनका आसन संस्कृत साहित्यमें अत्यंत उच्च प्रतीत होगा। समस्याके नियमित बंधनमें बद्ध रहकर महाकविने जिस प्रतिभा और मनोहारिणी कल्पनाका परिचय दिया है वह सम्पूर्ण काव्य-साहित्यमें बेजोड़ है।

यह काव्य ३६४ मन्दाक्रान्ता छन्दोंमें समाप्त हुआ है, और निर्णयसागर प्रेससे प्रकाशित होचुका है।

महापुराण—

उच्चकोटिकी काव्यकलाका यह सजीव चित्रण है, जैन साहित्यका तो यह सर्व श्रेष्ठ काव्य ग्रंथ है। कवि समाजमें यह ग्रन्थ बड़ी आदर दृष्टिसे देखा गया है। उन्होंने इसे एक अद्वितीय महाकाव्य घोषित किया है, यह ग्रन्थ शृंगार आदि नव रससे ओतप्रोत है। पद लालित्य, अर्थ सौष्ठव, सरलता, गम्भीरता, कोमलता आदि काव्यके सम्पूर्ण सद्गुणोंसे यह पूर्ण है। प्राकृति दृश्य और मानव विकारोंका इसमें

सुन्दर चित्रण है । इस ग्रन्थके सम्बंधमें एक कविने कहा—हे मित्र ! यदि तुम सम्पूर्ण कवियोंकी सूक्तियोंको सुनकर सरस हृदय बनना चाहते हो तो कविवर जिनसेनाचार्यके मुखकमलसे उदित हुए महा-पुराणको अपने कर्णगोचर करो ।

'जिस तरह बड़े२ बहुमूल्य रत्न समुद्रसे पैदा होते हैं उसी तरह सूक्त अथवा सुभाषित रूपी रत्न इस पुराणसे प्राप्त होते हैं ।

अन्य ग्रंथोंमें जो कठिनाईसे भी नहीं मिल सकते, वे सुभाषित पद्य इस ग्रंथमें स्थान२ पर सहजहीमें जितने चाहो उतने मिल सकते हैं। इसकी कविता सुन्दरता, कोमलता और स्वाभाविकतासे परिपूर्ण है।

आदिपुराणमें कविने अपने काव्यका प्रदर्शन करते हुए जीवन-चरित, भूगोल, तत्व दर्शन आदि सम्पूर्ण विषयोंका सुन्दर और विशद वर्णन किया है। आदिपुराणके पाठसे जैन धर्मके गूढ़से गूढ़ रहस्योंका अनुभव होता है, और उच्च कोटिके काव्यका सुमधुर सुस्निग्ध आस्वादन होता है ।

जिनसेनस्वामी रचित महापुराणकी श्लोक संख्या दश हजार है, यह आपका अपूर्व ग्रन्थ है जिसे आपके प्रधान शिष्य गुणभद्राचार्यने दश हजार श्लोकोंमें पूर्ण किया है ।

जयधवला टीका—आचार्य वीरसेनजीने कषाय प्राभृतकी टीका की थी उसमें प्रथम स्कंधको बीस हजार श्लोकोंमें पूर्ण करनेके पश्चात् आचार्य महोदयका निधन हो गया । उसकी पूर्ति जिनसेनस्वामीने साठ हजार श्लोकों द्वारा की है। इसमें विभक्ति, संक्रमोदय और उपयोग

ये तीन स्कंध हैं। गाथा सूत्र, सूत्र, चूर्णिसूत्र, वार्तिक वीरसेनीया टीका इस प्रकार इस टीकाका पंचांगी क्रम है, इसमें महावीर भगवानके अभिप्रायोंका संग्रह किया है, अन्य आगमोंके विषयका इसमें मंथन किया गया है।

आचार्य महोदयने इस ग्रन्थको सं० ८९४ में फाल्गुण शु० १० मध्याह्नको उस समय समाप्त किया है जब अष्टाह्निका पर्व महोत्सवकी पूजा होरही थी। आपके द्वारा वर्धमानपुराण और पार्श्व-स्तुतिकी भी रचना हुई है किन्तु यह दोनों ग्रन्थ अभी अप्राप्य हैं।

(१४)

गुणभद्राचार्य ।

गुणभद्रस्वामी अपने प्रतिभाशाली गुरुके योग्यतम शिष्य थे। उन्होंने अपनी काव्यकलासे अपने गुरुकी कीर्तिको द्विगुणित कर दिया है। सरसता, और सरलता आपके काव्यका प्रधान गुण था। आपने अपने जीवनमें सर्व प्रिय काव्यकी रचना की है। आपका संपूर्ण जीवन काव्य साधनामें ही व्यतीत हुआ है।

जीवन परिचय—

गुणभद्रस्वामीका निवास स्थान दक्षिण आरकट जिलेका 'तिरुनरुङ्कुण्डम्' नामक नगर था। आपके गृहस्थ जीवनके सम्बन्धमें कुछ परिचय प्राप्त नहीं होसका। आप सेन संघके आचार्य थे।

अपने गुरुकी तरह आपका स्थान भी कर्णाटक और महाराष्ट्र-प्रान्त रहा है। इसी प्रान्तकी राजधानियोंमें रहकर आपने ग्रन्थोंकी रचना की है, और जैन शासनकी प्रभावना की है। अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ उत्तरपुराणकी समाप्ति आपने बंकापुर नामक स्थानमें की है, जो बनवास देशकी राजधानी थी, जहां अकालवर्ष नरेशका सामन्त लोकादित्यका शासन था। वर्तमान बंकापुर धारवाड़के निकट एक छोटासा कस्बा है।

आचार्य जिनसेनस्वामी और आचार्य दशरथ गुरु आपके विद्यागुरु

रहे हैं। आचार्य जिनसेनके पश्चात् आप पट्टाधीश हुए और आचार्य पदवी प्राप्त की। आप प्रसिद्ध दिगम्बराचार्य थे।

गुणभद्रस्वामीके दो शिष्य थे, एक मुनि लोकसेन और दूसरे मंडलपुरुष। जिन्होंने 'चूडामणि निघंटु' नामक द्राविड़ भाषाका कोष निर्माण किया है।

समय निर्णय—

गुणभद्रस्वामी विक्रमकी ९ वीं सदीके आचार्य थे। आपके ग्रन्थोंपरसे आपका अस्तित्व विक्रम संवत् ८२० में रहा है।

योग्यता—

गुणभद्रस्वामी काव्य और साहित्यके प्रकांड विद्वान् थे। सिद्धान्त और आत्मतत्वके आप अनुभवी ज्ञाता थे। योगशास्त्र और आध्यात्मिक ग्रन्थोंका अच्छा अध्ययन किया था। आपमें स्वाभाविक कवित्व गुण था। और आपने अपनी कविताकी निर्झरणीको अत्यंत मधुर रूपमें प्रवाहित किया है।

महापुराण जैसे महान् ग्रन्थको पूर्ण करना आप जैसे साहित्य-कलाविद्का ही कार्य था। महापुराणमें आपने जिस तरह अपनी कविता कलाका परिचय दिया है, वह अत्यंत प्रशंसनीय है।

गुणभद्रस्वामीने अपने विषयमें स्वयं लिखा है—जिनसेन और दशरथ गुरुका जगत्प्रसिद्ध शिष्य गुणभद्रसूरि हुआ जिसे सारा व्याकरण शास्त्र प्रत्यक्ष हो रहा है। सिद्धान्तसागरके पार जानेसे जिसकी प्रतिभा तथा बुद्धि प्रकाशित होरही है। विद्या और उपविद्याओंके जो पार

पहुंच गया है, सारे नय और प्रमाणोंके जाननेमें जो चतुर है। इस तरह जो अगणित गुणोंसे भूषित है।

अपने पूज्य गुरुकी कविताकी समता करनेमें गुणभद्रस्वामीने पूर्ण सफलता प्राप्त की है। यह सफलता उसी तरहकी है जैसे बाण-भट्टके सुयोग्य पुत्रने अपने पिताकी अपूर्ण कादंबरीको पूर्ण करनेमें प्राप्त की है। आप एक आदर्श गुरुभक्त आचार्य थे।

ग्रंथ रचना—

गुणभद्रस्वामी द्वारा रचित महापुराणके शेष भागके अतिरिक्त तीन ग्रन्थ प्राप्त हैं—१ उत्तरपुराण, २ आत्मानुशासन, ३ जिनदत्त चरित्र।

महापुराण—महापुराणका शेषांश पिछले भागकी तरह काव्य-कलासे ओतप्रोत है। उसमें चरित, और सिद्धान्तका अत्यंत मनमनो-हरताके साथ निर्वाह किया गया है। सुन्दर सूक्तियों और अलंकारोंकी मधुर ध्वनिसे संपूर्ण कथाभाग झंकृत होरहा है। सुन्दर सूक्ति द्वारा अपने गुरुकी प्रशंसा कविने बड़े ही मनोरम शब्दोंमें की है—

"यदि मेरे वचन सरस व सुस्वादु हों तो इसमें मेरे गुरुमहाराजका ही महात्म्य समझना चाहिए। क्योंकि यह वृक्षोंका ही स्वभाव है जो उनके फल मीठे होते हैं।"

"हृदयसे वाणीकी उत्पत्ति होती है, और हृदयमें मेरे गुरुमहाराज विराजमान हैं, वे वहां बैठें हुए संस्कारित करेंगे। इसलिए मुझे इस शेष भागके रचनेमें परिश्रम नहीं करना पड़ेगा।"

"यह निश्चय होता है कि इसका अग्रभाग विरस नहीं होगा; क्योंकि धर्मके अन्तको किसीने कभी विरस होते नहीं देखा।"

"भगवान् जिनसेनके अनुयायी उनके पुराणके मार्गके आश्रयसे संसार समुद्रको तिरते हैं। फिर मेरे लिए इस पुराण सागरका पार करना क्या कठिन है।"

उपरोक्त उक्तियोंसे ही आचार्य महोदयकी काव्यकलाका पर्याप्त परिचय मिलता है। आपने १० हजार श्लोकोंमें महापुराणको पूर्ण किया है।

उत्तरपुराण—आपका यह ग्रंथ जैनधर्मके उपासक संपूर्ण महापुरुषोंके जीवनका चित्रण है। इसमें जैनधर्मके महान् प्रचारक २३ तीर्थंकरोंका चरित्र दर्पणके समान वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त संपूर्ण पुराण पुरुषोंका चरित्र बड़े सरस और सरल ढंगसे चित्रित किया है। बारह चक्रवर्ती, नव नारायण, नव प्रतिनारायण, नव बलभद्र आदि महापुरुषोंका चरित्रइसमें अंकित किया गया है। भाषा अत्यंत सरल और हृदयग्राही है। इस एक ग्रंथको पढ़ लेनेपर त्रेशठशलाका पुरुषोंका चित्र साम्हनेनेत्रोंके स्पष्ट रूपसे नृत्य करने लगता है। यह ग्रन्थ आठ हजार श्लोकोंमें समाप्त हुआ है। इस ग्रंथमेंसे एक 'जीवंधर चरित्र'को तंजौरके श्री कुप्पूस्वामी शास्त्रीने पृथक् रूपसे प्रकाशित किया है। विद्वानोंने उसकी काव्यकलाकी अत्यन्त प्रशंसा की है। यदि इस प्रकार जीवन चरितोंको पृथक् प्रकाशित किया जाता तो इस ग्रंथसे सैकड़ों जीवन चरित बन जाते हैं। इसका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो चुका है।

आत्मानुशासन—यह बहुत ही सुन्दर आध्यात्मिक ग्रंथ है। इसमें आत्मतत्व और उसके महत्वका वर्णन करते हुए उन पर किस प्रकार शासन किया जा सकता है, इसका वर्णन सरस और हृदय-

ब्राही भाषामें किया गया है। इसके अध्ययनसे मानवका मन आध्यात्मके गहरे स्रोतमें निमग्न होकर पूर्ण आत्मानंदका अनुभव करता है। संसारके आतप्त हृदयों पर इसका एक एक श्लोक पीयूषरसकी मनोरम वर्षा करता है। इसकी रचना भर्तृहरिके 'वैराग्यशतक' के ढंगकी है और अत्यंत प्रभावशालिनी है।

इस ग्रंथमें २७२ सुन्दर पद्य हैं। हिन्दी अनुवाद सहित यह प्रकाशित हो चुका है।

जिनदत्त चरित—यह एक सुन्दर कथा ग्रंथ है, इसकी रचना अत्यंत उच्चकोटिकी है। काव्यके संपूर्ण अंगोंसे यह काव्यग्रंथ परिपूर्ण है। आचार्य महोदयने अपने प्रकांड पांडित्यका इसमें पूर्ण परिचय दिया है।

इसमें ९ सर्ग हैं। संपूर्ण ग्रन्थ अनुष्टुप श्लोकोंमें वर्णित हैं।

इसका हिन्दी छन्दानुवाद प्रकाशित होचुका है।

भावसंग्रह नामक एक ग्रन्थ भी गुणभद्राचार्य द्वारा रचा गया है। परन्तु वह अभी अप्राप्य है।

(१५)

आचार्य प्रभाचन्द्र।

आचार्य प्रभाचन्द्रजी न्यायशास्त्रके महान् विद्वान् थे। आपने जिन महान् ग्रंथोंका निर्माण किया है, उससे आपकी प्रखर प्रतिभाका पूर्ण परिचय प्राप्त होता है। न्यायशास्त्रके अतिरिक्त सिद्धान्त, अध्यात्म तथा काव्यकला पर आपका विद्वत्तापूर्ण अधिकार था। शब्दशास्त्र, अलंकार तथा पुराण ग्रन्थोंके भी आप अच्छे ज्ञाता थे। सभी विषयों पर आपने विद्वत्तापूर्ण विस्तृत टीकाओंका निर्माण किया है।

हम आपके जीवन परिचयसे बिल्कुल अज्ञात हैं। प्रयत्न करने-पर भी हम यह नहीं जान सके कि आप किस वंशके भूषण थे। और आपने किस प्रकार धर्मप्रचार करके जैनशासनकी प्रभावना की। आपकी गुरु तथा शिष्य परंपराका कुछ भी वृत्तान्त प्राप्त नहीं हो सका।

समय—

आचार्य प्रभाचन्द्र ई० १०–११ वीं शताब्दीके (९८०–१०६५) के विद्वान् माने जाते हैं।

ग्रन्थरचना—

१–प्रमेयकमलमार्तंड, २–न्यायकुमुदचन्द्र, ३–तत्त्वार्थवृत्तिपदः विवरण, ४–शाकटायन न्यास, ५–शब्दाम्भोज भास्कर, ६–प्रवचन-

सार सरोज भास्कर, ७–गद्य कथाकोष, ८–रत्नकरण्ड श्रावकाचार टीका, ९–समाधितंत्र टीकाकी रचना की है। इनमें गद्य कथाकोष स्वतंत्र कृति है। शेष टीका-कृतियां हैं।

१–प्रमेयकमलमार्तंड—यह आचार्य माणिक्यनंदिके 'परीक्षा-मुख' सूत्र ग्रन्थपर रची हुई बृहत् टीका है। इसमें स्वतत्व, परतत्व और यथार्थता अयथार्थताका निर्णय बड़ी सरलतासे किया गया है। इसके द्वारा न्यायके रहस्यका बड़ी सरलतासे उद्घाटन किया गया है।

२–न्यायकुमुदचन्द्र—न्यायशास्त्रका यह अत्यंत उच्चकोटिका टीका ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ द्वारा आचार्य महोदयकी प्रकांड विद्वत्ताका पूर्ण परिचय प्राप्त होता है।

३–तत्वार्थ वृत्तिपद विवरण—यह तत्वार्थसूत्र पर लिखी गई सुबोध और सुन्दर टीका है।

आचार्य महोदयके अन्य टीका ग्रंथ भी आपकी विद्वत्ताके परिचायक हैं।

(१६)

वादीभसिंह ।

सकलभुवनपालानम्रमूर्धावबद्धस्फुरितमुकुटचूडालीढपादारविन्दः ।
मदवदखिलवादीभेन्द्रकुम्भप्रभेदी
गणभृदजितसेनो भाति वादीभसिंहः ॥
(मल्लिषेण प्रशस्ति)

आचार्य वादीभसिंह संस्कृतके महाकवियोंमें गिने जाते हैं । धर्म और सिद्धान्तके महान् विद्वान् होनेके अतिरिक्त आप तर्क, व्याकरण, छन्द, काव्य, अलंकार आदि विषयोंके अच्छे ज्ञाता थे ।

जीवन रहस्य—

अत्यंत परिश्रमके साथ खोज करनेपर भी आचार्य महोदयके वंशका परिचय प्राप्त नहीं हो सका । आप किस वंशके भूषण थे और किस यशस्विनी जननीने आपको जन्म दिया था यह अभी तक अज्ञात है । इतने महान् कीर्तिशाली पुरुषका पूर्ण परिचय न दे सकनेका हमें अत्यंत खेद है, लेकिन इसके लिए हम असमर्थ हैं ।

विद्वानोंका मत है कि आचार्य वादीभसिंहका जन्म तामील प्रान्तमें हुआ है । वर्तमान मद्रासमें पोळक नामक तालुकेके तिरुमले नामक प्राचीन क्षेत्रमें वादिभसिंहका समाधिस्थान है । इस पासे विद्वान् इतिहास संशोधकोंने आपका जन्म गुडियपत्तन नामक स्थान अनुमानित किया है । आपका जन्म नाम ओडेयदेव कहा जाता है । कुछ विद्वा-

नोंका मत है कि आपका दीक्षा नाम अजितसेन था और वादीभसिंह आपकी उपाधि थी।

आपके गुरु पुष्पसेन आचार्य थे, जिनके निकट आपने साधु दीक्षा ग्रहण की थी। वादिभसिंहजी द्रविड़संघके समर्थ आचार्य थे।

समय निर्णय—आपके समयका अभीतक पूर्ण निर्णय नहीं होसका है।

कुछ विद्वानोंका मत है कि आपका जन्म सन् ११०० के निकट होना चाहिए। सन् १०७७ से लेकर ११७० तकके शिलालेखोंमें आपका अनुमानित दीक्षा नाम अजितसेन मिलता है। इससे आपका जन्म इसी समयके बीच होना संभव प्रतीत होता है।

योग्यता और प्रतिष्ठा——मल्लिषेण प्रशस्ति नामक ग्रंथमें बतलाया है कि आप उच्चकोटिके कवि होनेके साथ २ शास्त्रार्थ करने और व्याख्यान देनेमें अत्यंत कुशल थे। विद्वान् लोग आपकी तर्कशैली और गंभीर अध्ययनको देखकर चकित हो जाते थे। बड़े २ वादी आपका लोहा मानते थे और आपके साम्हने नतमस्तक होते थे। अनेक स्थानों पर महान् वादियोंको जीतकर आपने 'वादिभसिंह' की उपाधि प्राप्त की थी।

आप राजमान्य और जैन जनताके अत्यंत श्रद्धाभाजन थे। आपकी कवित्वशक्ति और तर्कशैली पर जनता मुग्ध थी। बड़े२ राजा, महाराजा आपके उपासक थे और श्रावक जन आपके परम भक्त थे। कोप्पके एक शिलालेखमें आपको जैनागम रूपी समुद्रवर्द्धक 'चन्द्रमा' कहा है। बोगदिके शिलालेखमें एक 'महान् योगी' कहकर संबोधित किया गया है। इन शिलालेखों परसे आप महायोगी, त्याग, तपस्या और तत्वज्ञानके महास्तंभ सिद्ध होते हैं।

मैसूर प्रान्तमें आपने अपने जीवनका अधिकांश समय धर्मोपदेशमें व्यतीत किया। पोम्बुच्चके तत्कालीन सान्तावंशके शासक विष्णुवर्द्धनके महामंत्री माधव, महाप्रतापी दंडाधीश पुनीश, सरदार पारणरि, श्रेष्ठी जक्कि आदि आपके शिष्य रहे हैं।

शान्तिनाथ और पद्मनाभ नामक आपके दो विद्वान् शिष्य थे। शान्तिनाथ काव्यशास्त्रके अच्छे विद्वान् थे। आपकी उपाधि 'कविताकान्त' थी। पद्मनाभ वादविवादमें अत्यन्त निपुण थे। आप वादिकोलाहलकी पदवीसे प्रसिद्ध थे।

वादिभसिंहजीकी एक विदुषी शिष्या भी कही गई है। शिलालेखोंमें इनका नाम 'पंपादेवी' कहा है। पंपादेवी अत्यंत विदुषी और विद्वान् थी।

शिलालेखोंमें अजितसेनकी कीर्ति—

कुछ विद्वानोंका मत है कि शिलालेखोंमें वादिभसिंहजीकी कीर्ति अजितसेनके नामसे अत्यंत विस्तृत है। हम यहां कुछ शिलालेखोंको उद्धृत करके आपकी कीर्ति प्रदर्शित करनेका प्रयत्न करते हैं।

१—"विक्रम सान्तरदेवने अजितसेन पंडितदेवके चरण धोकर पंचकूटके जिन मंदिरके लिए भूमि दी" सान्तारवंशके तैल सान्तार नरेश पोम्बुच्चमें शासन करते रहे हैं। इस वंशके शासकों द्वारा निर्मापित कई जैन स्मारक आज भी जीर्णावस्थामें मौजूद हैं।

२—कोप्प ग्रामके स्मारकको महाराज मारसांतरवंशीने अपने गुरु (वादीभसिंहजी) की स्मृतिमें स्थापित किया। यह जैन आगम रूपी समुद्रकी वृद्धिमें चंद्रमा समान थे।

३—चालुक्य त्रिभुवनमल्लके राज्यमें उग्रवंशी अजवलि सान्तरने पोम्बुचमें पंचवस्ति बनवाई। उसके साम्हने अनन्दूरमें चहलदेवी और त्रिभुवन सान्तरदेवने एक पाषाणकी वस्ति श्री द्रविण संग अरुंगलान्वयके अजितसेन पंडित देववादिघरट्टके नामसे बनवाई।

४—द्वारावती नरेश होयसलदेवके महामंत्री श्री अजितसेनजीके शिष्य जैन श्रावक थे। यह बड़े वीर थे। इन्होंने टोडको भयभीत किया, कौणोंको पराजित किया, मलयालोंको नष्ट किया, कालराजको कंपायमान किया तथा नीलगिरिके ऊपर जाकर विजयपताका फहराई।

५—राजा विष्णुवर्द्धनके राजमें उनका महामंत्री माधव (वादिराज) अजितसेन आचार्यका शिष्य जैन श्रावक था। अजितसेन योगीश्वर महान् योगी थे।

६—सरदार पर्मादि उनका शिष्य था। उसका ज्येष्ठ पुत्र भीमय्य और पत्नी देवल थी। उनके पुत्र मारिसेट्टीने दोर समुद्रमें एक उच्च जैन मंदिर बनवाया।

ग्रन्थ रचना—

वादीभसिंहजीके रचे हुए दो ग्रंथ अत्यंत प्रसिद्ध हैं—एक 'क्षत्रचूड़ामणि', दूसरा 'गद्यचिंतामणि'।

क्षत्रचूड़ामणि—काव्यकलासे पूर्ण अत्यंत सुन्दर और सरस काव्य ग्रंथ है। इसमें महाप्रतापी महाराजा जीवंधरके विजयी और शौर्यपूर्ण जीवनका वर्णन है। जीवन घटनाओंका वर्णन करनेके साथ ही आचार्य महोदयने प्रत्येक श्लोकके उत्तरार्द्धमें उच्चकोटिकी नीति-शिक्षाका प्रदर्शन किया है। इस दृष्टिसे 'वीर काव्य' के साथ क्षत्र-चूड़ामणिको नीतिका एक अच्छा ग्रंथ कहा जासकता है। प्रत्येक

श्लोक, अर्थकी रमणीयता और अलंकारसे विभूषित है । संपूर्ण ग्रंथ सरस और सुन्दर कल्पनाओंके अनूठे चित्रणसे चित्रित है, जिसे पढ़ते ही सरसताकी मधुर तरंगें उमड़ने लगती हैं और हृदय आनंद-विभोर होजाता है ।

आचार्य महोदयने इस ग्रंथकी रचना करके जीवंधर नरेशके शौर्य और पराक्रम द्वारा वीर भक्तोंमें वीरता भरनेका सद्प्रयत्न किया है । क्षत्रचूडामणिको पढ़कर तेज और शक्तिमयी भावनाएं जाग्रत हो उठती हैं और जैनोपासक नरेशोंके बल विक्रमका जीवित चित्र अंकित होजाता है । यह ग्रन्थ सभी विद्यालयोंमें पढ़ाया जाता है और हिंदी अनुवाद सहित प्रकाशित होचुका है ।

गद्य चिन्तामणि—यह गद्यका बहुत ही सुंदर ग्रंथ है। इसमें भी जीवंधर स्वामीके वीरोचित गुणोंका वर्णन है । आपकी इस रचनामें काव्यके अनुरूप माधुर्य और सरलताकी मनोहर झलक स्पष्टतया प्रतिदर्शित होती है । यह ग्रंथ महाकवि बाणकी कादंबरी और धनपालकी तिलकमंजरी जैसा सरस और शृंगारादि रसोंसे ओतप्रोत है।

महा विद्वान् श्री टी० एस० कुप्पूस्वामी शास्त्रीने अपने एक लेखमें इस काव्य ग्रंथकी मुक्त कंठसे प्रशंसा करते हुए लिखा है— "पद लालित्य, शब्दसौन्दर्य, अनूठी कल्पना और हृदयको चुभनेवाली नीति, सरस और सरल वर्णनशैली यह इस काव्यकी विशेषताएं हैं" ।

यह दोनों कृतियां मद्रास विश्वविद्यालयके पठनक्रममें रक्खी गई हैं । इन अमरकृतियों द्वारा आचार्य वादीभसिंह साहित्य-गगनमें अपनी अमर कीर्तिपताका फहरा गए हैं ।

(१७)

सोमदेवसूरि ।

उद्धृत्यशास्त्रजलधेर्नितलेनिमग्नैः पर्यागतैरिव चिरादभिधानरत्नैः ।
या सोमदेवविदुषा विहिता विभूषाः वाग्देवतावदतु सम्प्रतितामनर्घाम्

' चिरकालसे शास्त्र समुद्रके विलकुल नीचे डूबे हुए शब्दरत्नोंका उद्धार करके विद्वान् सोमदेवने जो बहुमूल्य आभूषण ('काव्य) बनाया उसे श्री सरस्वतीदेवी धारण करें ।

सोमदेवसूरि बड़े भारी तार्किक विद्वान् थे। इसके साथ२ वे काव्य, व्याकरण, धर्मशास्त्रके भी धुरन्धर पंडित थे । राजनीतिमें तो वे अद्वितीय थे ।

जीवन परिचय—

सोमदेवसूरि देवसंघके महान् आचार्य थे । दिगम्बर सम्प्रदायके सुप्रसिद्ध चार संघोंमेंसे यह एक संघ था ।

आपके गुरुका नाम नेमिदेव और दादागुरुका नाम यशोदेव था ।

समय—

आपका समय विक्रमकी ११ वीं शताब्दी माना गया है । यशस्तिलक चम्पूकी प्रशस्ति द्वारा ज्ञात होता है कि आपने इसे चैत्र सुदी १३ शक संवत् ८८१ (विक्रम संवत् १०२६) को

समाप्त किया है । उस समय श्री कृष्णराजदेव पांड्य, सिंहल, चोल, चेर, आदि राजाओंको विजित कर मेलपाटी नामक सेना-शिविरमें थे । उनके विजयी सामन्त चालुक्यवंशीय अरिकेसरीके प्रथम पुत्र वद्दिगकी राजधानी गंगधारामें यशस्तिलक काव्य पूर्ण हुआ । नीतिवाक्यामृतकी रचना बादमें हुई है, इस प्रशस्ति परसे आपका समय वि० सं० ९८० से १०५० तक समझना चाहिए ।

विद्वत्ता—

सोमदेवसूरि बड़े आत्माभिमानी विद्वान् थे । तर्कशास्त्रके आप अपूर्व ज्ञाता थे, उनके तर्कके साम्हने किसी विद्वानका ठहर सकना कठिन था । उन्होंने अपने ग्रन्थकी प्रशस्तिमें स्वयं लिखा है " मैं छोटोंके साथ अनुग्रह, बराबरीवालोंके साथ सुजनता, और बड़ोंके साथ महान आदरका व्यवहार करता हूं, लेकिन जो मुझे ऐंठ दिखाता है उसके गर्वरूपी पर्वतको विध्वंस करनेके लिए मेरे वज्र वचन काल स्वरूप हो जाते हैं । "

" अभिमानी पंडितगजोंके लिए सिंहके समान ललकारनेवाले और वादिगजोंको दलित कर दुधर विवाद करनेवाले सोमदेव मुनिके साम्हने वादके समय वागीश्वर या देवगुरु बृहस्पति भी नहीं ठहर सकते । "

उपरोक्त वाक्योंसे आचार्य महोदयकी प्रचंड तर्क-शक्तिका पूर्ण परिचय प्राप्त होजाता है । आपने अपनी प्रबल तर्कशक्तिके प्रभावसे, स्याद्वादाचलसिंह, वादीभपंचानन और तार्किकचक्रवर्ती पद प्राप्त किए थे ।

सोमदेवसूरिका काव्यकलापर असाधारण अधिकार था । उनका यशस्तिलक काव्य संपूर्ण संस्कृत साहित्यमें एक अपूर्व काव्य है ।

कवित्वके साथ २ उसमें ज्ञानका विशाल खजाना संग्रहीत है। उसका गद्य, कदाम्बरी और तिलकमंजरीकी टक्करका है।

राजनीतिके तो वे अद्वितीय विद्वान थे उनका अध्ययन विशाल था। वे उस समयके संपूर्ण न्याय, व्याकरण, नीतिदर्शन और साहित्यसे परिचित थे। केवल जैन ही नहीं जैनेतर साहित्यमें भी उनका अच्छा अधिकार था।

राजशेखर, भवभूति, भारवि, कालिदास, बाण आदि महाकवियोंके काव्योंको उन्होंने छान डाला था। इन्द्र, चन्द्र, जैनेन्द्र पाणिनीके व्याकरणको उन्होंने देखा था। विशालाक्ष आदि नीतिशास्त्रोंके प्रणेताओंसे वे पूर्व परिचित थे। अश्वविद्या, गजविद्या, रत्नपरीक्षा, कामशास्त्र, वैद्यक आदि विद्याओंके आचार्योंकी उनको पूर्ण जानकारी थी। दर्शन और सिद्धांतोंमें उनका पूर्ण प्रवेश था। इस प्रकार आचार्य सोमदेवका ज्ञान विस्तृत और व्यापक था।

श्रेष्ठ कवित्वके कारण उन्हें वाकल्लोल पयोनिधि, कविराज कुंजर और गद्यपद्य विद्याधर चक्रवर्ती उपाधियां प्राप्त थी। नीतिवाक्यामृतकी प्रशस्तिमें उन्होंने लिखा है—

हे वादी! न तो तू समस्त दर्शन-शास्त्रोंपर तर्क करनेके लिए अकलंकदेवके तुल्य है, न जैन सिद्धांतको कहनेके लिए हंस सिद्धांतदेव है, और न व्याकरणमें पूज्यपाद है, फिर इस समय सोमदेवके साथ किस शक्तिके बलपर बोलनेका साहस करता है!

भारत इतिहास-संशोधन मंडलने एक ताम्रपत्र प्रकाशित किया है उस परसे सोमदेवसूरिका महत्व प्रदर्शित होता है। उसमें कहा है—

भगवान् सोमदेव समस्त विद्याओंके दर्पण, यशोधर चरितके रचयिता हैं। उनके चरण समस्त महासामन्तोंकी पुष्पमालाओंसे सुरभित हैं, और उनका यशः कमल समस्त विद्वज्जनोंके कानोंका आभूषण है। समस्त राजाओंके मस्तक उनके चरण कमलोंसे शोभायमान हैं।

अनेक विरुदावलियोंसे शोभित अरिकेसरीने अपने पिता श्रीमत् वद्यगके 'शुभधाम जिनालय' नामक मंदिरकी मरम्मत और पूजोपहारके लिये वैशाख पूर्णिमा शक सं० ८८८ को सोमदेवसूरिको पत्रिदेश-मुघलान्तर्गत रेशकद्वादशोंमेका वनिकटुपुलु नामक ग्राम जलधारा छोड़कर दिया। इस विवेचनसे सोमदेवसूरिकी प्रतिभा और प्रतिष्ठा भलीभांति प्रदर्शित होजाती है।

ग्रंथ रचना—

सोमदेवसूरिके दो ग्रन्थोंका पता चलता है—१ नीतिवाक्यामृत, २ यशस्तिलकचंपू। यह दोनों ग्रन्थ मूलरूपमें प्रकाशित होचुके हैं।

नीति वाक्यामृत—यह ग्रन्थ प्राचीन नीतिशास्त्रका सारभूत अमृत और संस्कृत साहित्यका एक अमूल्य और अनुपमरत्न है। इसमें राजनीतिका प्रधानतासे वर्णन है। राजा और उसके शासनसे सम्बन्ध रखनेवाली सभी आवश्यक बातोंका इसमें विवेचन है। यह सम्पूर्ण ग्रन्थ पद्यमें है और सूत्ररूपसे लिखा गया है।

नीतिवाक्यामृतकी प्रतिपादन शैली अत्यंत सुन्दर प्रभावशालिनी और गम्भीर है। बड़ी बातको छोटेसे वाक्यमें कह देनेकी इसमें सिद्ध हस्तकला है। इसमें सम्पूर्ण नीतिशास्त्रका अध्ययन करके उसके मधुर पियूषका संग्रह किया गया है। मनु, भारद्वाज, शुक, बृहस्पति,

विशालाक्ष, पाराशर आदि प्राचीन आचार्योंके राजनीति सम्बन्धी सभी मतोंका उल्लेख इसमें मिलता है।

इसमें ३२ समुद्देश्य हैं। इसका अध्ययन कौटिलीय अर्थशास्त्रके समझनेमें भारी सहायता देता है।

नीतिवाक्यामृतमें सौ सवासौ शब्द ऐसे हैं जिनका अर्थ किसी कोषमें नहीं मिलता। इसमें संपूर्ण विद्याओं और कलाओंका विवेचन है, और सम्पूर्ण दर्शनों और सिद्धान्तोंके विचार इसमें सन्निहित हैं, अनेकों ऐतिहासिक प्रसंगोंसे यह ग्रन्थ ओतप्रोत है।

यशस्तिलक चम्पू—इसमें यशोधरमहाराजका चरित वर्णित है। इसकी श्लोक संख्या ६ हजार है।

इस ग्रन्थमें आचाय महोदयने अपने विशाल अध्ययन तथा साहित्यके प्रकांड पांडित्यका पद पदपर प्रदर्शन किया है। संपूर्ण संस्कृत साहित्यमें यह उनकी अद्वितीय रचना है, राजनीति तथा काव्य साहित्यका यह महत्त्वपूर्ण मौलिक ग्रन्थ है। इसका गद्य कादंबरीकी टक्करका है। इस समूचे ग्रन्थमें ऐसे नये शब्दोंका प्रयोग किया गया है जो किसी भी कोष ग्रन्थमें नहीं मिलते।

इस एक ग्रन्थसे काव्य, अलंकार, रस आदिके सुन्दर परिचयके साथ २ अपूर्व प्रतिभाके दर्शन होते हैं।

सम्पूर्ण ग्रंथ कर्णप्रिय, अर्थ बहुल तथा चित्तमें चमत्कार पैदा करनेवाला है। जैन साहित्यके लिए यह अत्यंत गौरवकी वस्तु है, और काव्यके रसास्वादी प्रत्येक विद्वान्‌के लिए यह पठनीय तथा मननीय है।

इस ग्रंथकी प्रशंसामें आचार्य महोदयकी सुन्दर सूक्तियें पठनीय हैं।

समुद्रसे निकले हुए असहाय, अनादर्श और सज्जनोंके हृदयकी शोभा बढ़ानेवाले रत्नकी तरह मुझसे भी असहाय (मौलिक) अनादर्श (बेजोड़) और हृदयमंडन काव्यरत्न उत्पन्न हुआ।

"यदि आपका चित्त कानोंकी अंजुलिसे सूक्तामृतका पान करना चाहता है तो सोमदेवकी नई नई काव्योक्तियां सुनिये।"

"यदि सज्जनोंकी इच्छा हो कि वे लोकव्यवहार और कवित्वमें चातुर्य प्राप्त करें तो सोमदेवकी सूक्तियोंका अभ्यास करना चाहिए।"

"मैं शब्द और अर्थ पूर्ण सारे सारस्वतरस (साहित्यरस) को भोग चुका हूं, अतएव अब जो अन्य कवि होंगे वे निश्चयसे उच्छिष्ट-भोजी या जूठा खानेवाले होंगे, जो कोई नई बात न कह सकेंगे।"

समयरूपी विकट अजगरने जिन शब्दोंको निगल लिया था, अतएव जो मृत हो गए थे, यदि उन्हें श्री सोमदेवने उठा दिया—जिला दिया तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए। (इसमें 'सोमदेव' शब्दश्लिष्ट है) सोमचंद्रवाची है और चंद्रकी अमृत-किरणोंसे विष मूर्छित जीव सचेत हो जाते हैं।

इन उक्तियोंसे ज्ञात होता है कि उनका महाकाव्य कितना महत्त्वपूर्ण है। सचमुच ही यशस्तिलक शब्द-रत्नोंका खजाना है, और जिस तरह माघ-काव्यके विषयमें कहा जाता है उसी तरह यदि कहा जाय कि इस काव्यको पढ़ लेनेपर फिर कोई नया शब्द नहीं रह जाता तो कुछ अत्युक्त न होगा।

इस ग्रंथपर श्रुतसागरसूरिकी एक बहुत सरल तथा विस्तृत टीका उपलब्ध है किन्तु वह अधूरी है।

(१८)

आचार्य अमितगति।

आचार्य अमितगतिका पांडित्य अगाध था। उनकी कवित्व शक्ति उत्कृष्ट थी। वे अपने समयके बड़े भारी विद्वान् और कवि थे।

परिचय—

दुर्भाग्यसे आचार्य महोदयके वंश और माता पिताके नामोंका परिचय कहीं भी नहीं मिलता है।

आप माथुरसंघके श्रेष्ठतम आचार्य थे। आपके गुरुका नाम माधवसेन था। वाक्पतिराज राजा मुंजकी सभाके आप एक अनुपम रत्न थे।

समय—

आपका जन्मकाल विक्रम संवत् १०२० के लगभग माना गया है। आपने सुभाषित रत्नसन्दोहकी रचना वि० सं० १०५० में की है। इस समय आपकी आयु ३० वर्षके लगभग अवश्य होगी। इस दृष्टिसे आपका जन्म समय वि०की ११ वीं शताब्दि अनुमानित किया गया है।

योग्यता और प्रभाव—

आचार्य अमितगति संस्कृत साहित्यके उच्चकोटिके विद्वान् थे। आपने अनेक मतोंके ग्रन्थों और पुराणोंका अध्ययन किया था।

आपका अध्ययन विशाल और महत्वपूर्ण था। आप सुधारक आचार्य थे। प्रचलित मतमतांतरोंकी मनगढन्त बातों पर आपको विश्वास नहीं था। आपने उनका बड़े सुन्दर ढंगसे सुधार किया था। आपकी काव्यरचना शक्ति विलक्षण थी। धर्मपरीक्षा जैसे सुन्दर और सरस ग्रन्थका निर्माण उन्होंने केवल दो महीनेमें किया था। उनकी असाधारण विद्वत्तासे अनेक विद्वान् प्रभावित थे।

वाक्पतिराज मुंजकी सभामें आचार्य अमितगतिका स्थान बहुत ऊंचा था। राज्यसभामें उनका बड़ा आदर था।

राजा मुंजकी राजधानी उज्जयिनीमें रहकर आचार्य अमितगतिने कई ग्रन्थोंका निर्माण किया है। आपने अनेक विषयों पर ग्रन्थ लिखे हैं। सभी ग्रन्थ संस्कृत भाषामें हैं, सभी ग्रन्थोंकी रचना सरल और सुखसाध्य होने पर भी अत्यन्त गंभीर और मधुर है। संस्कृत साहित्य पर आपका अच्छा अधिकार था।

आचार्य अमितगति द्वारा रचित ग्रन्थोंका पता अभी तक लगा है। अन्य ग्रन्थोंका निर्णय अभी नहीं हो सका है।

सुभाषित-रत्न-संदोह—यह सुन्दर सुभाषितोंसे परिपूर्ण अत्यंत मनोरम ग्रन्थ है। इसकी भाषा बहुत ही सरस सरल और अलंकारमय है, इसमें सांसारिक विषय निरोध, माया और अहंकारनिग्रह, इन्द्रियदमन, नारी दोष गुण, शोक निवारण, सप्त व्यसन निषेध उदर, जरा आदि अनेक विषयोंका बड़े सुन्दर ढंगसे हृदयग्राही वर्णन है। प्रत्येक पद्य हृदयको लगनेवाला है। विद्वान् तथा साधारण कोटिके सभी स्त्री पुरुष इसका पठन कर अभूतपूर्व आनंदका अनुभव कर सकते हैं। यह ग्रन्थ विक्रम

संवत् १०५० पौष सुदी ५ को राजा मुंजके शासनकालमें समाप्त हुआ है, हिन्दी अनुवाद सहित यह प्रकाशित होचुका है ।

धर्म परीक्षा—यह संस्कृत साहित्यका एक अनूठा ही काव्य ग्रंथ है। इसमें हिन्दू धर्ममें चलनेवाली मनगढन्त कथाओं और मान्यताओंका सुंदर ढंगसे चित्रण किया है, और उनकी वास्तविकताका प्रदर्शन करते हुए उनपर बड़ी मीठी चुटकियां ली हैं । संपूर्ण ग्रंथ कथाके रूपमें बहुत ही मनोरंजक दृष्टिसे सरल श्लोकोंमें लिखा गया है । इसमें रामायण-महाभारत आदि सभी प्रसिद्ध ग्रन्थोंकी कथाओंकी समालोचना की है, जो एक सरस उपन्यासकी तरह हृदयको आकर्षित करती हैं । अर्थान्तर न्यास और नीतिके खण्ड श्लोकोंका इस संपूर्ण ग्रंथमें सुंदर समावेश है । यह ग्रंथ उनके असाधारण पांडित्यका प्रदर्शन करता है । यह ग्रंथ हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित होचुका है । इसकी रचना सं० १०७० में हुई है ।

पंच संग्रह—इस ग्रन्थमें गोमट्टसारके संपूर्ण विषयोंका संस्कृत श्लोकोंमें वर्णन किया है । सिद्धान्त जैसे जटिल विषयको सुगम संस्कृतमें वर्णन करके आचार्य महोदयने बड़े महत्वका कार्य किया है । इस ग्रंथके द्वारा गोमट्टसारका संपूर्ण विषय बहुत स्पष्ट होगया है । आचार्य महोदयने सं० १०७३ में इसका निर्माण किया है । यह मूलरूपमें प्रकाशित होचुका है ।

उपासकाचार—इसमें श्रावकोंके आचारका सरल श्लोकों द्वारा वर्णन किया है । रचना बहुत ही विशद सुगम और स्पष्ट है । इसकी श्लोक संख्या १३५२ है, हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित होचुका है।

भावना द्वात्रिंशतिका—यह सामायिक पाठके नामसे अत्यंत प्रसिद्ध है। इसकी रचना सुंदर सरल और हृदयको शांति देनेवाली है, इसका पाठ करनेसे पूर्ण आत्मतृप्ति प्राप्त होती है। प्रत्येक स्त्री पुरुष इसे बड़े चावसे पढ़ते तथा कंठ करते हैं, इसमें ३२ श्लोक हैं।

सामायिक पाठ—इसका नाम सामायिक पाठ है, परन्तु इसमें भावनाओंका ही वर्णन है। १२० सुंदर पद्य हैं, हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित होचुका है।

योगसार प्राभृत—इसकी रचना भी आचार्य अमितगतिने की है, परन्तु अभी इसका निर्णय नहीं हो सका कि यह आपका ही बनाया है अथवा दूसरे अमितगति आचार्यका है।

(१९)

वादिराजसूरि ।

वादिराजमनु शाब्दिकलोको वादिराजमनु तार्किकसिंहः ।
वादिराजमनु काव्यकृतस्ते वादिराजमनु भव्यसहायः ॥

" जितने वैयाकरण हैं, जितने नैयायिक हैं, जितने कवि हैं और जितने भव्य सहायक हैं वे सब वादिराजके पीछे हैं " ।

आचार्य वादिराजके महत्वको सभी विद्वानोंने एकस्वरसे स्वीकृत किया है । वास्तवमें आपका यशचन्द्र नीलाकाशमें अविच्छिन्न रूपसे व्याप्त था । आप अनेक नरेशोंसे पूजित थे, और वाद करनेवाले विद्वान् आपके नामको सुनकर ही कांप उठते थे ।

जीवन परिचय—

वादिराजजी नंदिसंघके आचार्य थे । आपकी शाखाका नाम अरुंजल था ।

आपकी जन्मभूमिका स्पष्ट परिचय कहीं भी नहीं मिलता है और न यह भी ज्ञात होता है कि आपने किस भाग्यशाली कुलमें जन्म लिया था । किन्तु अनेक अनुमानों परसे आपका जन्म दक्षिण मद्रास प्रान्तमें होना संभावित है ।

आपके गुरुका नाम मतिसागर मुनि था। रूपसिद्धिके रचयिता दयापाल नामक मुनि आपके सहपाठी थे।

समयनिर्णय—

आपने विक्रम संवत् १०८२ में पार्श्वनाथ चरितका निर्माण किया है। इसलिये आपका जन्म सं० १०४० के निकट होना प्रतीत होता है।

प्रतिमा और प्रतिष्ठा—

आचार्य वादिराजकी प्रतिभा बहुमुखी थी। आपकी प्रतिभाका महत्व सर्वत्र व्याप्त था। आप विद्वानों, वादियों और तार्किकोंमें शिरोमणि समझे जाते थे।

सिद्धान्तशास्त्रके आप महान विद्वान् थे। व्याकरण, काव्य, अलंकार आदि विषयमें आपका पूर्ण अधिकार था। काव्यकलाके मर्मज्ञ आप एक प्रतिभासम्पन्न सुकवि भी थे।

आप सभामें बोलनेके लिए अकलंकदेवके समान, वचनोंमें बृहस्पतिके समान, कीर्तिमें बौद्ध विद्वान् धर्मकीर्ति और न्यायवादमें गौतमके समान थे।

षट्तर्क षण्मुख, स्याद्वाद विद्यापति, और जगदेकमल्लवादि आदि अनेक उपाधियोंसे आप भूषित थे।

जयसिंहपुर नरेश, चालुक्यवंशीय महाप्रतापी राजा जयसिंह आपकी तपस्या, विद्वत्ता और काव्यशक्ति पर अत्यंत मुग्ध थे। मुनिराजके चरणकमलोंमें उनकी अत्यंत श्रद्धा थी।

राजा जयसिंह शक्तिशाली और धर्मात्मा थे, आपकी राजधानीमें

विद्याका बड़ा आदर था। बड़े २ कवि, वादी और प्रतिभापूर्ण विद्वान् आपकी राज्यसभामें रहते थे। आपके राज्यमें आचार्य वादिराजने अपनी कीर्ति-चंद्रिकाको विस्तृत किया था। जयसिंह नरेशको आपकी विद्वत्ताका अभिमान था, आचार्य महोदयको आपने 'जगदेकमल्लवादि' नामक उपाधिसे सम्मानित किया था।

प्रतिभाके साथ २ आपकी यौगिक शक्ति भी महान थी, आपकी चमत्कारिणी शक्तिके सम्बन्धमें निम्नलिखित कथा अत्यंत प्रसिद्ध है—

एक समय आचार्य वादिराजका सारा शरीर कुष्ट रोगसे पीड़ित होगया था। उनके शिष्योंको यह सब ज्ञात था, लेकिन राजा जयसिंहको इसका पता नहीं था। एकवार दरबारमें एक श्रावकसे आचार्यके कुष्ट रोगको लेकर वादविवाद चल पड़ा। गुरुभक्त श्रावक गुरु निन्दाके भयसे कुष्ट रोगको छिपाना चाहता था, और अन्य व्यक्ति उसे प्रकट करना चाहते थे। श्रावकने निश्चितरूपसे कह दिया था कि मेरे गुरु कोढ़ी नहीं हैं। किन्तु इसपर वादविवाद समाप्त नहीं हुआ, राजाने गुरु वादिराजको स्वयं देखना निश्चित किया। गुरुभक्तिके आवेशमें श्रावकने जो कुछ कह दिया था उसे निबाहनेकी उसे बहुत चिन्ता हुई, उसका मन बहुत बेकल हो उठा। लेकिन अपनी सत्यता प्रमाणित करनेका उसे कोई उपाय नहीं सूझ पड़ा। अन्ततः आचार्य महोदयके निकट जाकर उसने सभाका संपूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया, और अपने वचनकी पूर्तिका उपाय पूछा। श्रावकके हृदयकी बेचैनी दूर करते हुए आचार्य महाराजने कहा—श्रावक तुम कुछ चिन्ता मत करो, धर्मके

प्रभावसे सब कुछ होना संभव है। इसे सान्त्वना देकर आचार्य महोदयने 'एकीभाव' नामक स्तोत्र रचना प्रारम्भ किया। उक्त स्तोत्रका चौथा पद पढ़ते ही उनका संपूर्ण कोढ़मय शरीर स्वर्णकी तरह सुंदर होगया। श्रावकने वादिराजजीके इस महात्म्यको देखा और राजा जयसिंहको मुनिराजके दर्शनके लिए लाया। महाराज जयसिंहने उनके व्याधि रहित कांतिवान् शरीरको देखा। उन्हें उस व्यक्तिपर बड़ा क्रोध आया, जिसने उनसे कुष्टमय होनेकी बात कही थी। क्रोधमें आकर राजा उसे दंड देना चाहते थे, किन्तु क्षमाशील वादिराजने ऐसा करनेसे उन्हें रोका और कहा—महाराज! इस बेचारेका इसमें कोई अपराध नहीं है मेरा शरीर वास्तवमें कुष्ट रोगसे पीड़ित था, लेकिन धर्मके प्रभावसे आज मेरा कुष्ट दूर होगया है, उसकी निशानीके तौरपर मेरी कनिष्ठा अंगुलीमें अभी तक कुछ अंश मौजूद है। आचार्य महोदयके इस चमत्कारका महाराज जयसिंहपर बड़ा प्रभाव पड़ा, उन्होंने विनम्र भावसे उन्हें नमस्कार किया, और जैन धर्मके प्रभावका विचार करते हुए उसकी प्रशंसा की, और जैन धर्मके अनुयायियोंपर उनके हृदयमें सम्मान भाव जागृत हुआ।

मल्लिषेण प्रशस्तिमें वादिराजके लिए "सिंहसमर्च्यपीठविभवः" पद देकर उनके लिए जयसिंहनरेश द्वारा सम्मान पानेका साफ तौरसे समर्थन किया है। आचार्य वादिराजजीने भी श्रद्धा और भक्तिसे प्रेरित होकर जयसिंहनरेशकी राजधानीमें अधिक समय व्यतीत किया है। और अपनी अधिकांश रचनायें वहीं रहकर निर्मित की हैं।

आचार्य वादिराजजी द्वारा रचित ग्रंथोंमेंसे आजतक छह ग्रंथोंका पता लगा है—

१–एकीभावस्तोत्र, २–पार्श्वनाथ चरित, ३–काकुत्स्थ चरित, ४–यशोधरचरित, ५–न्याय विनिश्चय विवरण, ६–प्रमाण निर्णय।

इनमेंसे काकुत्स्थ चरित अभीतक अप्राप्त है। शेष न्याय विनिश्चय विवरणको छोड़कर सभी ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। आपके सभी ग्रंथ प्रतिभापूर्ण और उच्चकोटिकी कलासे पूर्ण हैं।

(१) एकीभावस्तोत्र—यह २५ पद्योंका पार्श्वनाथमय स्तोत्र है, इसमें मन्दाक्रान्ता छन्दोंमें भक्तिरसकी सरस और मधुमय निर्झरिणी प्रवाहित की है। प्रत्येक छन्द पढ़ते ही हृदयमें उच्चकोटिकी भावनाओंका उद्रेक होता है। अनूठी युक्तियों, सुंदर अलंकार और भाषाके प्रवाहसे यह स्तोत्र अत्यन्त रमणीय और हृदयको अत्यन्त प्रभावित करनेवाला है।

(२) पार्श्वनाथ चरित—१२ सर्गोंका यह एक सुंदर काव्य ग्रंथ है। इसमें आचार्य महोदयने हृदयकी संपूर्ण सुकुमार भावनाओंको भर दिया है। भगवान पार्श्वनाथ पर होनेवाले कमठके कठोर उपसर्गोंका इसमें अत्यन्त हृदयद्रावक वर्णन है। संपूर्ण ग्रन्थ उच्चकोटिकी काव्य-कलासे परिपूर्ण है।

(३) काकुत्स्थ चरित—आचार्य महोदयका यह ग्रन्थ भी अत्यन्त भावमय और कलापूर्ण होगा। किन्तु अभीतक इसके दर्शन प्राप्त नहीं हुए हैं।

(४) यशोधर चरित—यह एक उत्कृष्ट काव्य ग्रन्थ है। इसमें

केवल चार सर्ग हैं, जिसमें महाराजा यशोधरका जीवन अत्यन्त सुंदर-तासे चित्रित किया गया है । इसकी रचनाशैली हृदयहारिणी है । भाषा सरल और सरस है ।

(५) न्यायविनिश्चय विवरण—आचार्य अकलंकदेव रचित "न्यायविनिश्चय" नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थकी यह विस्तृत टीका है । इसमें प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम ये तीन परिच्छेद हैं । तथा अनेक मतों और विद्वानोंकी मान्यताओं परसे जैन दर्शनका तर्क पूर्ण ढंगसे प्रतिपादन किया है । जैन सिद्धान्तके प्रतिकूल होनेवाले बौद्धोंके तर्कका युक्तिपूर्वक खंडन किया है, और अनेक आचार्योंकी युक्तियोंको प्रमाण रूपमें देकर जैन दर्शनका मंडन किया है ।

(६) प्रमाण निर्णय—यह न्यायका ग्रन्थ है । इसमें प्रमाण, प्रत्यक्ष, परोक्ष, आगम इन चार परिच्छेदों द्वारा न्याय शास्त्रका बड़ा अच्छा वर्णन किया है ।

आचार्य महोदयके इन सभी ग्रन्थोंमें काव्यकला, न्याय, दर्शन आदि सभी विषयोंमें उच्चकोटिकी प्रतिभाके दर्शन होते हैं । आपकी काव्यशक्ति महान थी और आप भी महान् थे ।

(२०)

महाकवि हरिचन्द ।

महाकवि हरिचन्द प्रतिभाशाली कवि थे। आपका संस्कृत भाष्य-पर पूर्ण अधिकार था। उत्कृष्ट काव्यकलाके आप प्रतीक थे। आपनी कविताकी प्रौढताके कारण आप संस्कृतके प्राचीन महाकवि माघादिके समान कोटियोंमें गिने जाते हैं।

जीवन परिचय—

महाकवि हरिचन्द राजयमान्य कुलके भूषण थे। उनके वंशका नाम नोमक था। आपका वंश बहुत ही महिमावान और प्रसिद्ध था। आप कायस्थ जातिके अग्रगण्य पुरुष थे।

आपके पिताका नाम आर्द्रदेव था जो पुरुषोंमें रत्नकी तरह शोभित थे। आपकी माता रथ्या नामसे प्रसिद्ध थीं।

महाकवि हरिचन्द अरहंत भगवानके चरणकमलोंके लिए भ्रमर समान थे। आपकी वाणी सारस्वत स्रोतमें निर्मल होगई थी।

आपके एक भाई थे जिनका नाम लक्ष्मण था। भाई लक्ष्मणकी भक्ति और शक्तिके प्रभावसे आपने शास्त्र—समुद्रको उसी तरह पार किया था जिस तरह लक्ष्मणके द्वारा श्री रामजी सेतु पार गए थे।

उस समय जैनधर्म विश्वधर्म था। प्रत्येक जातिके व्यक्तिके लिए जैनधर्मका विशाल द्वार खुला था। वह किसी एक जातिके लिए

नहीं था । प्रत्येक व्यक्ति उसकी उपासना और भक्तिद्वारा महान् बन सकता था । उसी उदारताके समयमें ही हमारे महाकविका जन्म हुआ था । और कायस्थोंमें जैनधर्मकी उपासनाका आपने अपना प्रधान उदाहरण रक्खा था ।

आपने किस सौभाग्यशाली गुरुसे शिक्षण प्राप्त किया था यह अज्ञात है । केवल इतना ही विदित होता है कि गुरुके प्रसादसे उसकी वाणी निर्मल होगई थी । और वे श्रीगुरु दिगंबर संप्रदायके थे ।

समय निर्णय—

आपके समयका पूर्ण निश्चय नहीं होसका है । अनुमानसे आप विक्रमकी ग्यारहवीं सदीके विद्वान् समझे जाते हैं । आपके 'धर्मशर्माभ्युदय' महाकाव्यकी एक प्रतिलिपि सं० १२८७की प्राप्त हुई है । विद्वानोंका मत है कि यह ग्रंथ नेमिनिर्वाण काव्यसे पहलेका बना हुआ है । और नेमिनिर्वाण १२०० शताब्दिका बना हुआ है । अस्तु, आपका समय ग्यारहवीं शताब्दि निश्चित होता है ।

योग्यता-आपके 'धर्मशर्माभ्युदय' महाकाव्यके अध्ययनसे आपकी चमत्कारिणी प्रतिभाका जो परिचय प्राप्त होता है उससे ज्ञात होता है कि आप काव्य कलाके पूर्ण मर्मज्ञ थे। काव्य संबंधी आपका अध्ययन विशाल था, और काव्य संबंधी सभी विषयोंपर आपका पांडित्य पूर्ण प्रभाव था। शृंगार, समाज शास्त्र, प्रकृति, अध्यात्म, राजनीति, सिद्धांत आदि सभी विषयोंको आपने अपनी कुशल लेखनी द्वारा चमका दिया है । अनूठी उक्तिएं और अलंकारोंके आप रत्नाकर थे ।

(२१)

अमृतचन्द्राचार्य।

विषय—आचार्य अमृतचन्द्र आध्यात्मिक अपूर्व विद्वान् थे। आपका तत्वज्ञान बहुत ही चढ़ाचढ़ा था। आपके ग्रंथोंपरसे आपकी आध्यात्मिक वृत्तिका पूरा परिचय प्राप्त होता था। सिद्धान्तके भी आप अच्छे ज्ञाता थे। स्याद्वाद और अनेकांतका रहस्य आपने बड़े सुन्दर ढंगसे प्रदर्शित किया है।

जीवनवृत्त—

अमृतचन्द्राचार्य जैसे महान् आध्यात्मिक पुरुषके संबंधमें कहींसे भी कुछ परिचय हमें प्राप्त नहीं होसका। आपने किसी ग्रंथमें भी अपना परिचय नहीं दिया है। परिचय न देनेकी भावनापरसे आपकी महान् विरक्तताका महत्व तो प्रदर्शित होता है। किन्तु आपका परिचय न जान सकनेसे हमें अत्यंत खेद होता है। पं० आशाधरजीने अनगारधर्मामृतकी भव्य कुमुदचन्द्रिका टीकामें अमृतचन्द्राचार्यको दो स्थानोंमें ठक्कुर शब्दसे प्रतिघोषित किया है। इससे इतना ही ज्ञात होता है कि आप किसी प्रतिष्ठित राजघरानेके व्यक्ति थे।

समय निर्णय—

आपकी जीवन-घटनाओंकी तरह समय निर्णयमें भी हम असमर्थ हैं। अनेक अनुमानों द्वारा केवल इतना ही कहा जासकता

है कि आपका आविर्भाव विक्रमकी बारहवीं शताब्दिमें होना चाहिए।

आपके पुरुषार्थसिद्ध्युपाय ग्रंथके कुछ उद्धरण आचार्य पद्मप्रभ-देवने नियमसारकी तात्पर्यवृत्तिमें उद्धृत किए हैं इस दृष्टिसे आचार्य अमृतचन्द्रका उनसे कुछ समयपूर्व होना निश्चित होता है। आचार्य पद्मप्रभदेव विक्रमकी तेरहवीं शताब्दिके प्रारम्भिक विद्वान माने गए हैं। अस्तु अमृतचंद्राचार्यका समय इससे पहलेका समझना चाहिए।

आचार्य शुभचंद्रने भी अपने ज्ञानार्णवमें पुरुषार्थसिद्ध्युपायके पद्य उद्धृत किए हैं इससे यही ज्ञात होता है कि श्री अमृतचंद्राचार्य उनसे पहले हैं अर्थात् विक्रमकी १२ वीं शताब्दिके आचार्य हैं।

योग्यता—

आचार्य महोदयने अपनी कृतियोंमें आध्यात्मिक रहस्यको कूटर कर भर दिया है। आपकी टीकाओंका अध्ययन करनेपर आपकी अंतरंग पवित्रता और आत्म निमग्नताके दर्शन होते हैं। आपके ग्रंथोंका अध्ययन करके मन आत्मानंदमें विभोर हो जाता है और एक अपूर्व दिव्यताका अनुभव होता है। हृदय आत्मरस—रहस्यसे भरकर कुछ क्षणके लिए अद्भुत आत्मानुभवके समुद्रमें निमग्न होजाता है, अपरिमित सुख-शांति प्राप्त करनेके लिए आपके ग्रंथ कल्पतरुके समान हैं।

आपकी रचनाशैली अत्यंत सरल, हृदयग्राहिणी और सरस है, कठिनसे कठिन विषयको सरलसे सरल बना कर पाठकोंके हृदयमें प्रविष्ट करा देनेवाली आपकी साहित्यिक कृतिएं अद्वितीय हैं। आपके निम्नलिखित ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं।

पुरुषार्थसिद्ध्युपाय—यह श्रावकाचारका अपने ढंगका सर्वश्रेष्ठ

ग्रंथ है, इसमें मानव कर्तव्यका विवेचन बड़ी सुन्दरतासे किया है। इस ग्रंथमें आचार्य महोदयने अहिंसा धर्मका रहस्य विस्तृत रूपसे दिग्दर्शित किया है। व्यवहार और निश्चय नय तथा अनेकांतका वर्णन थोड़ेसे शब्दोंमें बड़ा ही हृदयग्राही है। इसके पठनसे प्रत्येकजन अपने वास्तविक पुरुषार्थको भली भांति जान सकता है। प्रत्येक विद्यालयमें यह ग्रंथ कोर्सके रूपमें पढ़ाया जाता है। स्त्री पुरुष इसका प्रतिदिन स्वाध्याय कर कर्तव्य मार्गका दिग्दर्शन करते हैं।

तत्वार्थसार—यह तत्वार्थसूत्रका अतिशय स्पष्ट, सुसम्बद्ध और बढ़ा हुआ पद्यानुवाद है। इसमें तत्वोंका विवेचन बड़ी सरलता और सुन्दरतासे किया है। इसके अध्ययनसे सम्पूर्ण तत्वार्थकी जानकारी बहुत ही आसानीसे हो जाती है।

समयसारटीका—यह भगवत्कुंदकुंदाचार्यके प्रसिद्ध आध्यात्मिक ग्रंथकी विशद संस्कृत टीका है। मूल ग्रंथ प्राकृत भाषामें है। आपने इस ग्रंथकी टीकाकर सर्वसाधारणके लिए आध्यात्मिक रसकी पिपासाको तृप्त कर दिया है। रचनाशैली प्रौढ़ और मर्मस्पर्शिनी है।

प्रवचनसार टीका—यह भी आचार्य कुंदकुंदजीके प्राकृत ग्रन्थकी विस्तृत संस्कृत टीका है, इसमें प्रत्येक विषयको अत्यंत स्पष्ट कर दिया है।

पंचास्तिकाय टीका—यह ग्रन्थ भी उक्त आचार्य महोदयके प्राकृत ग्रन्थकी टीका है। आचार्य कुंदकुंदाचार्यके तत्व विज्ञान सम्बन्धी कथनको टीकाकारने स्पष्ट कर दिया है।

---

(२२)
आचार्य शुभचन्द्र।

ज्ञानार्णवके कर्ता आचार्य शुभचन्द्र योगशास्त्रके अच्छे ज्ञाता थे। आप स्वयं एक महान् योगी थे। तपश्चरणके प्रभावसे आपको अनेक ऋद्धियां प्राप्त थीं। योग जैसे गम्भीर विषयका आपने बड़ी सुन्दरतासे चित्रण किया है। संस्कृत भाषापर आपका पूर्ण अधिकार था।

आचार्य शुभचंद्रजीके संघ, गण या गच्छका कोई पता नहीं चलता, प्रयत्न करने पर भी यह ज्ञात नहीं हो सका कि आपके गुरुका क्या नाम था। आपका जन्म कब और कहां हुआ इसका निश्चय भी अभी तक नहीं हो सका।

समय निर्णय—

ज्ञानार्णवकी रचनापरसे पता चलता है कि उसका निर्माण विक्रम सं० १२०७से लेकर १२२९के बीचके समयमें हुआ है। इस परसे कहा जा सकता है कि आचार्य शुभचंद्र तेरहवीं सदीके विद्वान थे।

ज्ञानार्णवकी अत्यंत प्राचीन प्रति जो वीर सं० १२५० के लगभग लिखी प्रतीत होती है उसके अंतमें लिखा हुआ है कि जाहिणी आर्यिकाने कर्मोंके क्षयके लिये ज्ञानार्णव नामक ग्रंथ, ध्यान अध्ययनशाली तप और शास्त्रके निधान, तत्वोंके ज्ञाता और रागादि

रिपुओंके पराजित करनेवाले मल्ल जैसे शुभचन्द्र योगीको लिखकर दिया। जाहिणी नृपुरी ग्रामके नेमिचंद नामक परम श्रावककी पुत्री थी। वह अत्यंत शांतचित्त और संयत थी। शास्त्रकी ज्ञाता और विरक्तचित्त थी। संसारके मोहने उसपर तनिक भी प्रभाव नहीं डाला था। नवयौवन अवस्थामें ही उसने ऐसा कठोर तप किया था जिसे देख सज्जन जन 'साधु-साधु' कह कर स्तुति करते थे। यम, व्रत, तप, स्वाध्याय, ध्यान, और संयम तथा कायक्लेश द्वारा उसने अपने जन्मको सफल किया था। वह साक्षात् भारतीदेवी तथा शासनदेवीकी तरह प्रतीत होती थी। उसी तपस्विनी जाहिणीने ज्ञानार्णवकी यह प्रति लिखाकर दी थी। इससे प्रतीत होता है कि विक्रमकी बारहवीं शताब्दिके अंतिम पदसे भी पहिले ज्ञानार्णवकी रचना हुई है।

आचार्य शुभचन्द्रके ज्ञानार्णव और प्रसिद्ध श्वेताम्बराचार्य हेमचंदके योगशास्त्रके अधिकांश प्रकरण एकसे मिलते जुलते हैं। योगशास्त्रके ९ वें प्रकाशसे लेकर ग्यारवें प्रकाश तक प्राणायाम और ध्यानवाला भाग ज्ञानार्णवके २९ वेंसे लेकर ब्यालीसवें सर्ग तकके वर्णन और विषयसे पूर्ण साम्य रखता है। केवल छंदोंमें परिवर्तन होनेके कारण ही कुछ शब्द बदले हुए हैं। दोनों ग्रंथोंके समान विषयोंको देखते हुए प्रतीत होता है कि किसी एक आचार्यने दूसरेका विषय ग्रहण किया है लेकिन आचार्य शुभचन्द्रके संवत्का निश्चय पता न लगनेसे यह नहीं कहा जा सकता कि किसने किसके ग्रंथको ग्रहण किया है। आचार्य शुभचन्द्रके संबंधमें एक कथा भक्तामर कथामें लिखी हुई है जिसका सारांश हम नीचे दे रहे हैं—

उज्जयिनीके प्रसिद्ध नरेश सिंधुलके दो पुत्र थे। एक शतकत्रयके प्रसिद्ध रचयिता राजा भर्तृहरि और दूसरे महान् योगी शुभचन्द्र।

सिंधुलके पिताने मूंजमें पड़े हुए एक बालकका पालन किया उसका नाम मुंज था। उस समय सिंधुलका जन्म नहीं हुआ था इसलिए मुंज राज्यका स्वामी बनाया गया था।

भर्तृहरि और शुभचन्द्र दोनों अत्यंत पराक्रमी और शक्तिशाली थे। उनकी वीरताको देख राजा मुंजका हृदय भयभीत हो उठा। वे सोचने लगे कि बड़े होने पर ये मेरे राज्यको अवश्य छीन लेंगे, इस आशंकासे उसने दोनो बंधुओंका वध करनेका आदेश दिया। बंधुओंको इस आदेशका पता लग गया और वे दोनो संसारसे विरक्त होकर दीक्षित हो गए।

शुभचन्द्रजी जैन धर्मकी दीक्षा लेकर महान् तपश्चरणमें निमग्न हो गए और भर्तृहरि तांत्रिक मत ग्रहणकर तंत्रमें लीन हो गए। बारह वर्षके योगबलसे भर्तृहरिने अनेक ऋद्धिएं प्राप्त कीं। उन्होंने एक ऐसे रसकी भी प्राप्तिकी जिसके बलसे तांबा सोना बन जाता था।

एकबार भर्तृहरिने तपश्चरणमें मग्न हुए दिगंबर मुनि शुभचन्द्रको देखा। उन्हें मलिन और नग्न स्वरूप देखकर भर्तृहरिके हृदयमें अत्यंत करुणा जागृत हुई और एक तूंबी रस उनके पास भेजकर उसके द्वारा सोना बनानेका आदेश दिया।

निर्ग्रंथ शुभचन्द्र निस्पृही साधु थे। उन्होंने उस रसको साधारण जलकी तरह फेंक दिया। इससे भर्तृहरिको बहुत खेद हुआ। शुभचन्द्रजीने उनके हृदयके दुःखको समझा और उसकी शान्तिके लिए

उन्होंने अपने पगकी धूलि लेकर एक बड़ी शिलापर छोड़ दी। योगीके तीव्र तपश्चरणके प्रभावसे संपूर्ण शिला स्वर्णमय होगई। योगी शुभचन्द्रकी इस अद्भुत योगशक्तिको देखकर भर्तृहरिको उनपर अत्यंत श्रद्धा हुई और उन्होंने जैन धर्मको ग्रहण किया। आचार्य शुभचन्द्रने भर्तृहरिको योगका सच्चा ज्ञान प्राप्त करानेके लिए 'योगप्रदीप' अथवा ज्ञानार्णवनामक ग्रंथकी रचनाकी जिससे भर्तृहरिजीने सच्चे योगको धारण किया।

ग्रन्थरचना—ज्ञानार्णव दिगम्बर संप्रदायका योग संबंधी प्रसिद्ध ग्रंथ है। इसमें बड़े ही सरल और सुन्दर ढंगसे योग संबंधी विषयोंका वर्णन किया है। इसमें ४३ अधिकार हैं। वास्तवमें यह ग्रंथ ज्ञानका समुद्र और योगमार्गको प्रदर्शित करनेके लिए उत्कृष्ट दीपकके समान है। इसकी श्लोक संख्या २१८४ है। योगके साथ २ वैराग्य और मानव कर्तव्यका इसमें बड़े मार्मिक ढंगसे निरूपण किया है।

ज्ञानार्णवका भाषानुवाद पं० जयचंद्रजीने सं० १८०८में किया था।

इसकी सहायतासे पं० पन्नालालजी बाकलीवालने खड़ी बोलीमें इसे परिवर्तित किया है। यह ग्रंथ हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित होचुका है।
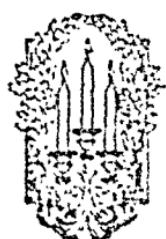
(२३)

पंडित आशाधर ।

" आशाधरो विजयतां कलि कालिदासः "

पंडित आशाधरजी अपने समयके अद्वितीय विद्वान थे। आपकी प्रतिभा महान और पांडित्य विशाल था। गृहस्थ होने पर भी आपकी सांसारिक विरक्ति और निस्पृहता प्रशंसनीय थी। साहित्यिक श्रेष्ठताके कारण अनेक ग्रन्थकर्ताओंने आपका स्मरण आचार्यकल्पके नामसे किया है। अनेक भट्टारकों और मुनियोंने आपका शिष्यत्व ग्रहण किया है।

जीवन किरणें—

पंडित आशाधरजी बघेरवाल जातिके भूषण थे। आपके पिताका नाम श्री सल्लक्षण और माताका श्री रत्नी था। श्री सल्लक्षणजी राजाकी उपाधिसे भूषित थे। अपनी योग्यताके कारण उन्हें मालव नरेश अर्जुनवर्म देवके संधि, विग्रहमंत्रीका पद प्राप्त था।

आपकी जन्मभूमि मांडलगढ़ थी। मेवाड़ राज्यमें उस समय मांडलगढ़ चौहान राजाओंके आधीन था। बाल्यावस्थामें ही आप मांडलगढ़ त्याग कर धारानगरी आए थे। धारानगरी विद्याका केन्द्र होनेके कारण विद्वानोंके सम्मानके लिये अत्यंत प्रसिद्ध थी। वहां

आपने व्याकरण और न्यायशास्त्रका अध्ययन किया था। आपके विद्यागुरु पं० महावीरजी प्रसिद्ध विद्वान् थे।

पंडित आशाधरजीके पिता राज्यमान्य थे। यदि आप चाहते तो आपको भी उच्च राज्यपद प्राप्त हो सकता था परन्तु आपने अपना जीवन जैनधर्म और साहित्य सेवामें ही लगा देना उचित समझा और जीवनभर उसके उद्धारमें संलग्न रहे।

आपकी सुशीला पत्निका नाम सरस्वती था। सरस्वतीके गर्भसे छाहड़ नामक सुयोग्य पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ था। छाहड़ अत्यंत राज्यकुशल था। अपनी योग्यताके कारण राजा अर्जुनवर्मका वह अत्यंत स्नेहपात्र था। पंडित आशाधरजीने अपने सुयोग्य पुत्रकी स्वयं प्रशंसा की है। उन्होंने लिखा है कि जिस तरह सारस्वती (शारदा) के द्वारा मैंने अपने आपको उत्पन्न किया उसी तरह अपनी सरस्वती नामक पत्निके गर्भसे छाहड़को उत्पन्न किया जो अतिशय गुणवान हैं।

आशाधरजीके हृदयमें जैनधर्मके उद्धारकी प्रबल तरंगें उमड़ रहीं थीं, वे अपने आप रोक नहीं सके और साहित्यका अवलंबन लेकर धर्मोद्धारके क्षेत्रमें दृढ़तासे उतर आए। आपने जैनधर्मके सभी विषयोंका एकलग्नतासे अध्ययन किया और जैन सिद्धांतके अध्ययनके अतिरिक्त न्याय, व्याकरण, काव्य, अलंकार आदि विषयोंमें असाधारण योग्यता प्राप्त की। आपका जैनधर्मका अध्ययन अगाध था। उस समयके सम्पूर्ण जैन साहित्यका अध्ययन कर आप उसके तलतक पहुंच गए थे।

विन्ध्यवर्माका राज्य समाप्त होनेपर आप नालछा (नलकच्छपुर) में रहने लगे। उस समय नलकच्छपुरके राजा अर्जुनवर्म देव थे।

उनके राज्यमें आपने अपने जीवनके पैंतीस वर्ष व्यतीत किये थे। वहांके अत्यन्त सुन्दर नेमि चैत्यालयमें आप जैन साहित्यकी उपासना करते रहे।

पं० आशाधरजी गृहस्थ थे। आपको मुनिवेषका लोभ नहीं था। उस समयके साधु जीवनको देखकर उनके आचरण परसे आपकी श्रद्धा मुनिवेषसे हट गई थी इसलिये आपने गृहस्थमार्गको ही अपने साहित्योद्धारके लिये चुना था। गृहस्थ धर्मका पालन करते हुए साहित्योद्धारका जो कार्य आपने किया वह अभूतपूर्व था।

गृहस्थका जीवन सादा और विरक्ति पूर्ण था। अपने जीवनके अंतमें तो आपकी विरक्ति चरमसीमाको पहुंच गई थी।

समय निर्णय—

पं० आशाधरजीने अपनी ग्रंथ प्रशस्तियोंमें जन्म समयका कोई निश्चित उल्लेख नहीं किया है परन्तु आपके ग्रंथों परसे आपका जन्म विक्रम संवत् १२३५ के लगभग माना जाता है। आपका अंतिम ग्रंथ अनगार धर्मकी भव्य कुमुदचन्द्रिका नामक टीका है। आपने इसे कार्तिक सुदी ५ सोमवार वि० सं० १३०० में समाप्त की है। इस समय आपकी आयु ६५–७० वर्षके लगभग कही जाती है। इस परसे ही आपके जन्मका निर्णय हो जाता है।

योग्यता और साहित्यसेवा—

पंडित आशाधरजीका साहित्य तथा जैन सिद्धांत संबंधी ज्ञान अगाध था। आप सभी विषयोंके अधिकारी विद्वान् थे।

और प्रत्येक विषय पर अपनी सुयोग्य लेखनीको चलाकर प्रशंसनीय काव्यधाराको बहाया है।

जैनधर्मके अतिरिक्त अन्य मतवाले विद्वान् भी आपकी विद्वत्ता पर मुग्ध थे और अनेक विद्वानोंने आपके महान पांडित्यकी मुक्तकंठसे प्रशंसा की है।

विन्ध्यवर्माकेसंधि विग्रह मंत्री कविश्वर विल्हण आपकी विद्वत्तासे अत्यंत प्रभावित थे। उन्होंने पंडितजीके अगाध पांडित्यकी मुक्तकंठसे प्रशंसा की है।

मुनि उदयसेनने आपको 'नयविश्व-चक्षु' तथा 'कलि-कालिदास' कहा है। मदनकीर्ति यतिपतिने 'प्रज्ञापुंज' कहकर आपकी प्रशंसा की है।

पंडित आशाधरजीको पदवियोंका मोह नहीं था। स्वयं पंडित रहकर भी आप बड़े २ मुनियों और भट्टारकोंके गुरु रहे हैं।

अनेक विद्वानोंने आपके निकट अध्ययन किया है।

मालव नरेश अर्जुनवर्माके गुरु बालसरस्वती महाकवि मदनने आपके निकट काव्यशास्त्रका अध्ययन किया था।

वादीन्द्र विशालकीर्तिने आपसे न्यायशास्त्र और भट्टारकदेव विनयचन्द्रने धर्मशास्त्र पढ़ा था और अनेक वादियोंको विजित किया था।

पंडित देवचन्द्र आपसे अध्ययन कर व्याकरण शास्त्रमें पारङ्गत हुए थे।

महाकवि अर्हद्दासने आपसे धर्मामृत पान किया था।

ग्रंथ रचना—

विद्वद्वर्य आशाधरजी द्वारा लिखे हुए निम्न ग्रन्थोंका पता अभी तक लगा है—

१ प्रमेय रत्नाकर—इसे विद्वानोंने स्याद्वाद विद्याका निर्मल-प्रसाद कहा है। इसकी रचना गद्यमें की गई है। कहींर सुन्दर पद्योंका भी समावेश है। अभीतक यह अप्राप्त है।

२—भरतेश्वराभ्युदय—इसके प्रत्येक सर्गके अंतिम छन्दमें 'सिद्धि' शब्दका प्रयोग किया है इससे इसे सिद्ध्यंक कहा है। इसमें प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेवजीके पुत्र भरतके प्रतापका वर्णन है। स्वोपज्ञ टीका सहित यह महाकाव्य है। अभीतक अप्राप्त है।

३—ज्ञानदीपिका—यह सागार और अनगार धर्मामृतकी स्वोपज्ञ पंजिका टीका है। सागारधर्मामृतकी मराठी टीकामें टिप्पणीके स्थानपर इसका अधिकांश भाग प्रकाशित होचुका है। इसकी एक कनड़ी प्रति थी जो अब नष्ट होगई है।

४—राजीमति-विप्रलंभ—यह खण्ड-काव्यस्वोपज्ञ टीका सहित है। इसमें राजीमती और नेमिनाथके वियोगकी कथा है। अप्राप्य है।

५—अध्यात्म रहस्य—योगाभ्यासका आरंभ करनेवालोंके लिये यह बहुत ही सुगम योगशास्त्रका ग्रंथ है। अपने पिताके आदेशसे इसकी रचना की गई थी। अप्राप्य है।

६—मूलाराधना-टीका—यह आचार्य शिवार्यकी प्राकृत आराधनाकी टीका है जो शोलापुरसे प्रकाशित हो चुकी है।

७—इष्टोपदेश-टीका—आचार्य पूज्यपादके सुप्रसिद्ध ग्रंथकी यह टीका है। यह सुन्दर टीका है। यह प्रकाशित होचुकी है।

८—भूपालचतुर्विंशतिका टीका—यह भूपाल कविके प्रसिद्ध स्तोत्रकी टीका है। अप्राप्य है।

९–आराधनासार टीका—यह आचार्य देवसेनके आराधना-सार नामक प्राकृत ग्रन्थकी टीका है। अप्राप्य है।

१०–अमरकोष-टीका–इस सुप्रसिद्ध कोषकी टीका अप्राप्य है।

११–क्रियाकलाप—ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन बम्बईमें इसकी एक प्रति है। इसमें १९७६ श्लोक हैं।

१२–काव्यालंकार-टीका—अलंकार शास्त्रके सुप्रसिद्ध आचार्य रुद्रटके काव्यालंकारकी यह टीका है। अप्राप्य है।

१३–सहस्रनाम-स्तवन-सटीक–स्वनिर्मित सहस्रनाम स्तोत्रकी स्वोपज्ञ टीका है। सहस्रनाम छप चुका है। परन्तु टीका अप्राप्य है।

१४–जिन यज्ञ कल्प-सटीक—इसका दूसरा नाम प्रतिष्ठा-सारोद्धार भी है। यह मूल मात्र छप चुका है, परन्तु टीका अप्राप्य है।

१५–त्रिषष्टिस्मृतिशास्त्र-सटीक—यह ग्रंथ मराठी अनुवाद सहित प्रकाशित होचुका है। संस्कृत टीकाके अंश टिप्पणीमें दिये गये हैं।

१६–नित्यमहोद्योत—यह अभिषेक पाठ है। प्रकाशित होचुका है।

१७–रत्नत्रय-विधान—यह ८ पृष्ठोंका ग्रंथ सरस्वतीभवन बम्बईमें है।

१८–अष्टांग हृदयोद्योतिनी टीका—यह आयुर्वेदाचार्य वाग्भटके प्रसिद्ध ग्रन्थ वाग्भट या अष्टांग हृदयकी टीका है। अप्राप्त है।

१९–सागारधर्मामृत—भव्य कुमुदचन्द्रिका टीका सहित -

यह श्रावकाचारका अत्यंत महत्वशाली ग्रंथ है। श्रावकके नित्य कर्त-व्योंका दिग्दर्शन इसमें बड़े सुन्दर ढंगसे किया है। यह ग्रन्थ सभी विद्यालयोंकी परीक्षाओंमें रक्खा गया है। हिन्दी टीका सहित प्रकाशित होचुका है।

२०-अनगार धर्मामृत—भव्य कुमुदचन्द्रिका टीका सहित—इस ग्रंथमें साधु धर्मका बड़े सुन्दर ढंगसे वर्णन है। हिन्दी टीका सहित प्रकाशित होचुका है।

इन सभी महत्वशाली ग्रन्थोंकी रचना कर पंडित आशाधरजी साहित्यक्षेत्रमें अपना नाम अमर कर गए हैं।

(२४)

पं० अर्हद्दास ।

पं० अर्हद्दास काव्यकलामें अत्यंत निपुण थे। आपने अजस्र गतिसे अपनी कविता निर्झरनीको प्रवाहित किया है।

जीवन परिचय—

पं० अर्हद्दासजीकी जीवनवृत्ति अत्यंत उदार थी। काव्य द्वारा आपको किसी प्रकारके यश अथवा प्रशंसाकी चाह नहीं थी। वर्तमानमें जहां अन्य विद्वानोंकी कृतियों द्वारा कुछ यशलोलुप व्यक्ति अपना मिथ्या प्रकाशन करते हैं वहां अनेक मौलिक और चमत्कारिक काव्योंकी सृष्टि करके भी आचार्य महोदयने अपना कुछ भी परिचय नहीं दिया। यही कारण है कि आपके जीवनके सम्बन्धमें अभीतक कुछ भी नहीं हो सका।

उनके ग्रंथोंकी प्रशस्तिपरसे केवल इतना ही ज्ञात हो सका कि आपने अपना कवितागुरु पंडिताचार्य आशाधरजीको माना है और उनकी ही कविता तथा उपदेशसे प्रभावित होकर आपने काव्य रचना की है।

समय निर्णय—

पंडित आशाधरजीका समय वि० सं० १३०० निर्णीत हो चुका है। अस्तु, पं० अर्हद्दासजीका समय भी यही समझना चाहिये।

विशेष परिचय—

पं० अर्हद्दासजी काव्यके पूर्ण मर्मज्ञ थे। आपकी कविता शृंगार, हास्य, करुण, वैराग्य आदि रसोंसे ओतप्रोत है। अर्हद्दासजीने गद्य और पद्य दोनोंमें उच्च कोटिकी काव्य साधना की है। आपने अपने काव्यका प्रवाह स्वतंत्र रूपसे प्रवाहित किया है। आपके काव्य द्वारा प्रतीत होता है कि आप बड़े ही स्वाभिमानी कवि थे। काव्य द्वारा आप किसी नरेश अथवा वैभवशाली व्यक्तियोंकी प्रशंसा करना अपना अपमान समझते थे। उन कवियोंकी आपने बहुत ही भर्त्सना की है जो अपनी काव्य कलाको धन वैभव प्राप्ति अथवा चापलूसीका साधन बनाते हैं।

आपकी उक्तियां सुंदर और हृदयस्पर्शिनी हैं। आपकी कल्पनाएं सरस और मधुर हैं।

आपके द्वारा रचित तीन काव्य ग्रन्थ अभीतक उपलब्ध हुए हैं। १—मुनिसुव्रत काव्य, २—पुरुदेव चम्पू, ३—भव्यकंठाभरण।

मुनिसुव्रत काव्य—इसमें २० वें तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रतनाथका पवित्र जीवनचरित बड़ी ही रोचकताके साथ वर्णित है। इसमें दश सर्ग हैं।

आपका यह संपूर्ण काव्य माधुर्य तथा प्रसाद गुणसे परिपूर्ण है। प्रत्येक श्लोक सुन्दर अलंकारसे अपनी मनोरम छटाको प्रदर्शित करता है। कविकी उत्कृष्ट काव्य-कल्पना कवि बाणभट्टकी टक्करकी है।

मुनिसुव्रत काव्यपर एक सुन्दर संस्कृत टीका है किन्तु टीका-कारने अपना नाम तक देनेका प्रयत्न नहीं किया है।

यह काव्य हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित होचुका है।

पुरुदेव चम्पू—पं० अर्हद्दासजीका यह गद्य पद्यमय अत्यंत सरस और माधुर्यपूर्ण काव्य है। इस काव्यमें महाकविने अपने सुंदर शब्द-लालित्यका परिचय दिया है। उच्चकोटिकी हृदयको चुभनेवाली उपमाओं और अलंकारोंसे संपूर्ण ग्रंथ परिपूर्ण है। चमत्कृत कल्पनाओं तथा धर्मोपदेशके विशिष्ट गुणका पद पदपर परिचय प्राप्त होता है।

इस काव्य द्वारा कवि महोदयने आदि तीर्थंकर ऋषभदेवका पुण्यचरित्र अंकित किया है।

यह ग्रन्थ माणिकचन्द्र ग्रंथमालासे मूलमात्र प्रकाशित होचुका है।

(२५)

अभिनव धर्मभूषण।

राजाधिराजपरमेश्वरदेवरायभूपालमौलिलसदंघ्रिसरोजयुग्मः।
श्रीवर्द्धमानमुनिवल्लभमौढ्यमुख्यः श्रीधर्मभूषण-
सुखी जयति क्षमाढ्यः॥

परिचय—धर्मभूषण यतिका जन्म स्थान विजयनगर कहा जाता है। आपके वंश तथा माता पिता आदिका कुछ परिचय नहीं प्राप्त होसका। आपके गुरुका नाम भट्टारक वर्द्धमान था। आप अपने गुरुके प्रधान शिष्य थे। मूलसंघके अन्तर्गत नंदिसंघके आप यति थे। बलात्कारगण और सारस्वत आपका गच्छ था। अभिनव उपनाम और यति आपकी पदवी थी।

समय—अभिनव धर्मभूषणका जन्म विद्वानोंने १४वीं शताब्दि निर्धारित किया है। पद्मावती वस्तीके एक लेखसे ज्ञात होता है कि राजाधिराज परमेश्वर देवराज, यति धर्मभूषणके चरणोंमें नमस्कार किया करते थे। इनका राज्य १४१८ ई० तक रहा है। अस्तु, यति धर्मभूषणका अंतिमकाल ई० १४१८ होना चाहिए।

प्रभाव और योग्यता—

यति धर्मभूषण अपने समयके सबसे बड़े प्रभावशाली जैन गुरु थे, पद्मावती वस्तीके शासन लेखमें उन्हें महान वक्ता और उच्च कोटिका विद्वान् प्रदर्शित किया है। वे अनेक मुनियों और राजाओंसे पूजित थे। विजयनगर नरेश प्रथम देवराय जिन्हें राजाधिराज परमेश्वरकी उपाधि

प्राप्त थी, आपका बड़ा सम्मान करते थे और आपके चरणोंमें मस्तक झुकाया करते थे। आपने विजयनगरके राजघरानेमें जैनधर्मकी अतिशय प्रभावना की है। इस घरानेमें जैन धर्मकी जो महान प्रतिष्ठा हुई है उसका श्रेय आपको ही है।

यति धर्मभूषण न्यायशास्त्रके उच्चकोटिके विद्वान् थे। आपकी विद्वत्ताका प्रभाव उस समयके सभी विद्वानोंपर था। जैनधर्मकी प्रभावना आपके जीवनका प्रधान व्रत था। धर्म प्रभावनाके अतिरिक्त ग्रंथ रचना कार्यमें भी आपने अपनी अपूर्व शक्ति और विद्वत्ताका पूर्ण परिचय दिया है यद्यपि आज उनकी एक ही रचना प्राप्त है, परन्तु इसके द्वारा ही वे अपना यश अमर कर चुके हैं। इसमें आपकी विद्वत्ताका प्रतिबिम्ब स्पष्टतया आलोकित होता है।

न्यायदीपिका—न्यायदीपिका जैन न्यायकी उच्चकोटिकी कृति है। इसमें न्याय तत्वका संक्षिप्त रूपसे स्पष्ट विवेचन किया है। इसकी भाषा अत्यंत सुबोध और परिमार्जित है। वर्णनका ढंग अत्यंत सरल है जो हृदय पर अपना स्वाभाविक प्रभाव डालता है। इसकी रचना सूत्ररूपसे की गई है।

न्यायदीपिकामें प्रमाण-लक्षण-प्रकाश, प्रत्यक्ष प्रकाश और परोक्ष प्रकाश ये तीन प्रकाश हैं। इन प्रकाशों द्वारा आचार्य महोदयने वस्तु तत्वका विशद विवेचन किया है।

यह ग्रन्थ सभी विद्यालयोंकी परीक्षामें सम्मिलित है। विस्तृत विवेचनके साथ यह "वीर-सेवा-मंदिर" से प्रकाशित हो चुका है।

(२६)

नाट्यकार हस्तिमल्ल ।

किं वीणागुणझंकृतैः किमथवा सांद्रैर्मधुस्यन्दिभि-
र्विश्राम्यत्सहकारकोरकशिखाकर्णावतंसैरपि ।
पर्याप्ताः श्रवणोत्सवाय कविताम्राज्यलक्ष्मीपते,
सत्यं नस्तव हस्तिमल्लसुभगास्ताराः सदा सूक्तयः ॥

—मैथिली कल्याण ।

हस्तिमल्लजी जैन समाजके सुप्रसिद्ध नाट्यकार हैं। इस दृष्टिसे आप एक विशेष महत्व रखते हैं। जैनाचार्योंने काव्य, साहित्य और न्याय संबंधी उच्चकोटिके महत्वपूर्ण ग्रन्थोंका निर्माण कर जैन वाङ्मयका गौरव प्रदर्शित किया है, लेकिन नाटक या रूपक जैसा विषय अभीतक अछूता ही रहा है। यद्यपि कुछ आचार्योंने श्रव्यकाव्य लिखे हैं, परन्तु दृश्य काव्यों पर किसीने दृष्टिपात नहीं किया। हस्तिमल्लजीने उच्चकोटिके सरस सुंदर नाटकोंकी रचना करके जैन साहित्यका भंडार भर दिया है।

जीवन परिचय—

हस्तिमल्लजी ब्राह्मण वंशके भूषण थे। आपके पिताका नाम

गोविन्दभट्ट था। आप दक्षिण प्रांतके निवासी थे। गोविन्दभट्ट बड़े भारी विद्वान् थे। स्वामी समंतभद्रके देवागमस्तोत्रके प्रभावसे आकर्षित होकर उन्होंने जैनधर्म ग्रहण किया था। आपके छह विद्वान् पुत्र थे। १—श्रीकुमार कवि, २—सत्यवाक्य, ३—देवरवल्लभ, ४—उदयभूषण, ५—हस्तिमल्ल, ६—वर्धमान। छहों पुत्र अत्यंत विद्वान् और कवि थे।

हस्तिमल्लजी गृहस्थ थे। उनके पुत्रका नाम पार्श्वपंडित था। पिताके समान पुत्र भी यशस्वी, धार्मिक और शास्त्रज्ञ था।

हस्तिमल्लका वास्तविक नाम क्या था इसका कुछ पता नहीं चल सका। यह नाम उनका उपनाम था।

पांड्यदेशके गुडिपत्तनके राजा पांड्यकी राज्यसभामें श्री हस्तिमल्लजीका बड़ा आदर था। अपने विद्वान् बंधुजनोंके साथ वे वहीं रहने लगे थे। राजाकी उन पर अत्यंत कृपा थी। अनेक प्रसंगों पर पांड्यनरेशने उन्हें सम्मान प्रदान किया था। एक समय उन्होंने राजाके अनुरोध पर अपनी भुजाओंसे एक मदोन्मत्त हाथीको वशमें किया था। इस कृत्यसे अत्यंत प्रसन्न होकर राजाने उन्हें हस्तिमल्लकी उपाधि प्रदान की थी। राज्यसभाके समस्त दर्शकोंने उनकी अत्यधिक प्रशंसा करके उन्हें सम्मानित किया था। एक समय एक धूर्त व्यक्तिको भी उन्होंने परास्त किया था जो जैन मुनिका बनावटी वेष रखकर आया था। इस प्रकार हस्तिमल्लजी राज्यमान्य और प्रतिष्ठाप्राप्त व्यक्ति थे। आपकी शारीरिक शक्ति दर्शनीय थी।

समय निर्णय—

कर्नाटक-कविचरित्रके कर्ता आर० नासिंहाचार्यने हस्तिमल्लका समय ईस्वी सन् १२९० वि० सं० १३४७ निश्चित किया है।

अय्यपार्य नामक विद्वानने हस्तिमल्लकी रचनाओंका सार लेकर प्रतिष्ठापाठ लिखा है। उक्त ग्रन्थ वि० सं० १३०६में समाप्त हुआ है। अस्तु, हस्तिमल्लजीको विक्रमकी चौदहवीं शताब्दिका विद्वान् मानना चाहिए।

विद्वत्ता—

हस्तिमल्लजी साहित्यके महान् विद्वान् थे। 'सरस्वती स्वयंवर-वल्लभ', 'महाकवि वल्लभ' और 'सूक्ति रत्नाकर' यह आपकी उपाधियें थीं।

सत्यवाक्ने इन्हें 'कवितासाम्राज्य लक्ष्मीपति' के नामसे संबोधित कर उनकी सूक्तियोंकी प्रशंसा की है।

आप संस्कृत और कनड़ी दोनों भाषाओंमें अपूर्व विद्वत्ता रखते थे। ब्रह्मसूरिने आपको 'उभयभाषाचक्रवर्ति' के नामसे संमानित किया है।

आपका साहित्यिक ज्ञान उच्चकोटिका था। आपके नाटक नाट्य-कलासे पूर्ण हैं। अपने पात्रोंका चरित्र चित्रण आपने बड़े स्वाभाविक रूपसे किया है।

नाटकोंमें आपने उच्चकोटिका आदर्श प्रदर्शित किया है। नाटकोंकी भाषा अत्यंत सरस और हृदयग्राही है। प्रत्येक पात्रके आदर्शको हृदयपर एक गहरा प्रभाव डालती है।

आपका कोई भी नाटक अभीतक हिन्दीमें अनुवादित होकर प्रकाशित नहीं होसका है।

ग्रन्थ रचना—

हस्तिमल्लजीके अभीतक चार नाटक प्राप्त हुए हैं, (१) विक्रान्त-कौरव, (२) मैथिलीकल्याण, (३) अञ्जना पवनंजय, और (४) सुभद्राहरण। इनमेंसे विक्रान्त-कौरव और मैथिली कल्याण प्रकाशित होचुके हैं।

उपरोक्त ग्रंथोंके अतिरिक्त १ उदयनराज, २ भरतराज, और ३ मेघेश्वर नामक नाटकोंका उल्लेख मिलता है। एक ग्रन्थ प्रतिष्ठा-तिलकके नामसे भी आपका प्राप्त हुआ है।

(२७)

कवि राजमल्ल ।

कविवर राजमल्लजी जैन सिद्धांतके उच्च कोटिके विद्वान् थे । आप एक मास कवि और महान् साहित्यिक थे ।

जीवन परिचय—

आपका जीवन परिचय कुछ भी प्राप्त नहीं हो सका । आपके ग्रन्थोंपरसे अनुमानसे यह पता लगता है कि आप एक जैन गृहस्थ त्यागी या ब्रह्मचारी थे ।

विद्वानोंका अनुमान है कि आप १७ वीं शताब्दिके ग्रंथकार थे । जम्बूस्वामी चरितमें आपने आगरे नगरका बड़ा सुंदर वर्णन किया है । उस समय अकबर बादशाहका शासन था । जम्बूस्वामीचरित आपने आगरेके गर्गगोत्री टोडरसाहुके लिये निर्माण किया था । इससे पता चलता है कि आपका निवास आगरा अथवा इसीके निकट कहीं रहा है ।

योग्यता और विद्वत्ता—

कविवर राजमल्लजी ख्याति-प्राप्त और प्रतिष्ठित विद्वान तथा कवि थे । आपने उच्च कोटिके कितने ही ग्रंथोंका निर्माण किया है। संस्कृतके अतिरिक्त प्राकृत और अपभ्रंश भाषापर भी आपका अच्छा

अधिकार था। विद्वानोंने आपको स्याद्वादनवद्य गद्य पद्य विद्याविशारदकी पदवीसे स्मरण किया है इससे ज्ञात होता है कि आपकी प्रतिभा और विद्वत्ता महान् थी और आप सभी विषयोंके विद्वान् थे।

ग्रन्थ निर्माण—

आपके द्वारा लिखित निम्न ग्रन्थोंका पता अभी तक लगा है। यदि खोज की जाय तो आपके द्वारा लिखित और भी ग्रंथ प्राप्त हो सकते हैं।

१—पंचाध्यायी २—अध्यात्म कमल मार्तंड, ३—लाटी संहिता, ४—जम्बूस्वामी चरित्र ५—पिंगल ग्रन्थ अथवा छंदोविद्या।

पंचाध्यायी—कविवरका यह सिद्धांतका उच्च कोटिका महान् ग्रंथ है। यह ग्रन्थ अभी अधूरा है। इसके डेढ़ अध्याय ही है। यदि यह ग्रन्थ पूर्ण होता तो जैन सिद्धांतका अपूर्व ग्रन्थ होता। फिर भी जितना यह है उतना ही इसका विषय अत्यंत महत्वपूर्ण है।

पिंगलग्रंथ (छंदोविद्या)—इसमें छंदशास्त्रके नियम, लक्षण और उदाहरण दिए हैं। इसकी भाषा प्राकृत और अपभ्रंश प्रधान है। संस्कृतमें भी कुछ नियम, लक्षण और उदाहरण हैं। इसके द्वारा कविमहोदयने प्राकृत और संस्कृतके छंदोंके सुन्दर लक्षण अंकित किए हैं। अनेक स्थानोंपर दूसरोंके संस्कृत, प्राकृत वाक्योंको उद्धृत किया है और कहीं २ अन्य आचार्योंके मतका स्पष्टरूपसे उल्लेख किया है। यह अपने विषयका एक सुंदर और प्रमाण ग्रंथ है। इस ग्रंथ परसे आपकी काव्य-प्रवृत्ति और रचना-चातुर्यका सुंदर परिचय प्राप्त

होता है । कवित्वके अतिरिक्त इससे इतिहासका भी काफी परिचय प्राप्त होता है । इस दृष्टिसे यह ग्रंथ अत्यंत महत्वपूर्ण होगया है । इस ग्रन्थकी रचना श्री भारामल्लजीके लिए की गई थी ।

जंबूस्वामी चरित्र—यह १३ सर्गोंका एक सुंदर काव्य ग्रंथ है । इसमें श्रेष्ठीपुत्र जंबूकुमारके महान् शौर्य, वीरता और त्यागका सुंदर परिचय दिया गया हैं। भाषा सरल, कलापूर्ण और हृदयग्राहिणी है । इसमें अलंकारों और अन्योक्तियोंकी सुंदर छटा प्रदर्शित होती है।

इस ग्रंथके प्रथम अध्यायमें आगरा नगर और अकबरबादशाहके प्रभुत्वका बड़ा ही मनोहर परिचय दिया है । जिससे उस समयके इतिहासका परिचय प्राप्त होता है । इस ग्रंथकी रचना वि० सं० १६६२ में हुई है ।

इस ग्रन्थका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित होचुका है ।

(२८)

भट्टाकलंक ।

[नोट—प्रेस कापीसे पृष्ठ अलग हो जानेके कारण अकलंकदेवका यह जीवन निश्चित स्थानपर नहीं आसका । समय-क्रमसे तो यह आचार्य नेमिचन्द्रके समीप होना चाहिए ।]

किं वाद्यो भगवानमेयमहिमा देवोऽकलंकः कलौ ।
काले यो जनतासु धर्मनिहितो देवोऽकलंको जिनः ॥

अकलंकचरित ।

" इस कलिकालमें अकलंकाचार्यसे वाद करनेके लिए कौन समर्थ है ? वे अतिशय ज्ञानवान् भगवान् हैं । अपरिमित महिमा-निधान, देवतुल्य और आत्मरसके पान करनेमें निरत हैं । "

जैन समाजमें अकलंकदेवका नाम अत्यंत श्रद्धा और सम्मानके साथ लिया जाता है । वास्तवमें ये जैन शासनके महान प्रचारक और दिग्विजयी आचार्य थे ।

न्यायशास्त्रके पारंगत विद्वान होनेके अतिरिक्त वे प्रसिद्ध दार्शनिक थे । अपनी अकाट्य युक्तियों, विशाल तर्क और सिद्धान्तोंके बल पर उन्होंने भारतमें जैन न्यायके दिग्विजयका डंका बजाया था । बौद्धोंद्वारा प्रताडित जैन समाजमें नवजीवन मंत्र फूंकनेका उन्हें महान्

श्रेय प्राप्त है। इन्होंने प्रकाशमान भास्करकी तरह उदित होकर अपनी प्रभावान किरणोंसे अज्ञान ध्वांतको नष्ट किया था। वे त्याग-मूर्ति थे और महासागरके समान गम्भीर थे।

जीवन रहस्य—

अकलंकदेवके जीवन सम्बंधमें अनेक कथायें प्रचलित हैं। लेकिन ऐतिहासिक दृष्टिसे उनका जन्मस्थान अभीतक निश्चित नहीं हो सका।

अनेक विद्वानोंका मत है कि उनका जन्मस्थान दक्षिण भारतके मान्य-खेट नगरके निकट होना चाहिए, और वह स्थान कांची (कांजी-वाम्) अनुमानित किया जाता है।

राजवार्तिकालंकारके प्रथम अध्यायमें कहा गया है कि वे 'लघु-हव्व' नामक राजाके पुत्र थे।

अकलंकदेव बालब्रह्मचारी थे। उनके हृदयमें विद्याध्ययनकी उत्कृष्ट अभिलाषा थी। किन्तु उस समय विद्याध्ययनके साधन आजकी तरह सरल नहीं थे। उनके साम्हने अनेक कठिनाइयां थीं। इन्होंने कष्टोंकी परवाह न करके अपनी ज्ञानपिपासाको तृप्त किया था। विद्वानोंका मत है कि इन्होंने पोनतगके विशाल बौद्ध विद्यालयमें अध्ययन किया था। वे प्रतिभाशाली थे, अल्प समयमें ही वे न्याय और तर्क शास्त्रके प्रकाण्ड विद्वान् बन गए थे।

अकलंकदेवने आजीवन धर्मप्रचारका व्रत ग्रहण किया था। यही कारण था कि वे जैन धर्मके प्रचारार्थ तपस्वी बन गए, ज्ञान और तेजस्विनि प्रतिभाके बलपर उन्होंने शीघ्र ही आचार्यपद प्राप्त कर लिया।

समय निर्णय—

अकलंक देवका समय विक्रमकी सातवीं शताब्दि माना जाता है क्योंकि विक्रम संवत् ७०० में उनका बौद्धोंके साथ महान वाद हुआ था, जो निम्न पद्यसे ज्ञात होता है।

विक्रमार्क-शकाद्वीय-शत सप्त प्रमाजुपि ।
कालेऽकलंकयतिनो बौद्धैर्वादो महानभूत् ॥

नन्दिसूत्रकी चूर्णिके कर्ता प्रसिद्ध श्वेताम्बर विद्वान् श्री जिनदासगणी महत्तरने अकलंकदेवके इस समयकी पुष्टिकी है और उनके 'सिद्धि विनिश्चय' ग्रंथका बड़े गौरवके साथ उल्लेख किया है। इस चूर्णिका रचनाकाल शक संवत् ५९८ अर्थात् वि० संवत् ७३३ है जैसा कि उसके निम्न वाक्यसे प्रकट होता है। "शकं राज: पंच सुवर्षे शतेपु व्यतिक्रान्तेपु अष्टनवतिपु नन्द्यध्ययनचूर्णि: समाप्ता"। इस समयको मुनि जिनविजयजीने अपने ताड़पत्रीय प्रतियोंके आधारसे ठीक बतलाया है अत: अकलंकदेवका समय विक्रमकी सातवीं शताब्दि सुनिश्चित है।

मुख्तार साहिब तथा अन्य ऐतिहासिक विद्वान भी अकलंकदेवका समय ७ वीं शताब्दि मानते हैं।

अकलंक सम्बन्धी कथाएं—

ब्रह्मचारी नेमिदत्तंकृत आराधना कथाकोपमें अकलंकदेवके संबंधमें एक कथा वर्णित है जिसका संक्षेप निम्न प्रकार है—

मान्यखेटके राजा शुभतुंग थे। उनके मंत्रीका नाम पुरुषोत्तम था। पद्मावती उनकी पत्नी थी। पद्मावतीके गर्भसे दो पुत्र उत्पन्न हुए जिनका नाम अकलंक और निकलंक था। एक समय अष्टाह्निका

महोत्सवके प्रारम्भमें मंत्री महोदय सकुटुंब रविगुप्त नामक मुनिके दर्शनार्थ गए थे। मुनि महोदयने धर्मोपदेश देते हुए उन्हें आठ दिनके लिए ब्रह्मचर्य व्रत प्रदान किया। उन्होंने विनोदके साथ २ दोनों पुत्रोंके लिए भी ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा दिला दी, युवा होनेपर इन दोनोंका विवाह किन्हीं सुयोग्य कन्याओंसे निश्चित किया गया किन्तु दोनों सच्चरित पुत्रोंने विवाहसे अपनी असहमति प्रकट की और आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत पालन करनेकी दृढ़ता प्रदर्शित की। दोनों बंधु विद्याध्ययनमें पूर्ण व्यस्त होगए। उस समय बौद्ध धर्मका सर्वत्र प्रचार था इसलिए उन्होंने बौद्ध शास्त्रोंके अध्ययनका निश्चय किया और वे महाबोधि विद्यालयमें बौद्ध ग्रन्थोंका अध्ययन करने लगे।

एक दिन—गुरु महोदय शिष्योंको सप्तभंगी सिद्धान्त समझा रहे थे लेकिन पाठ अशुद्ध होनेके कारण वे उसे ठीक नहीं समझा सके। गुरुके कहीं चले जानेपर अकलंकने उस पाठको शुद्ध कर दिया इससे गुरु महोदयको उन पर जैन होनेका संदेह होने लगा। कुछ दिनोंमें उन्होंने अपने प्रयत्नों द्वारा उनको जैन प्रमाणित कर लिया। दोनों भाई काराग्रहमें बन्द कर दिए गए। रात्रिके समय दोनों भाइयोंने जेलसे निकल जानेका प्रयत्न किया। वे अपने प्रयत्नमें सफल हुए और काराग्रहसे निकल भागे। प्रातःकाल ही बौद्ध गुरुको उनके भाग जानेका पता लगा। उन्होंने चारों ओर अपने सवारोंको दौड़ाकर दोनों भाइयोंको पकड़ लानेका आदेश दिया।

सवारोंने उनका पीछा किया। कुछ दूर आगे चलकर दोनों भाईयोंने अपने पीछे आनेवाले सवारोंको देखा। अपने प्राणोंकी

रक्षा न होते देख अकलंक निकटके एक तालावमें कूद पड़े और कमलपत्रोंसे अपने आपको ढंक लिया। निकलंक प्राण रक्षाके लिए शीघ्र भागनेका प्रयत्न करने लगे। उन्हें भागता देख तालावका एक धोबी भी भयभीत होकर साथ साथ भागने लगा। सवार निकट आ-चुके थे, उन्होंने दोनोंको शीघ्र ही पकड़ लिया और उनका वध कर डाला। सवारोंके चले जानेपर अकलंक तालावसे निकल निर्भय होकर भ्रमण करने लगे।

कलिंगदेशके रत्नसंचयपुरका राजा हिमशीतल था। उसकी रानी मदनसुंदरी जिनधर्मकी अत्यंत भक्त थी। वह बड़े उत्साहके साथ जैन रथ निकाल रही थी; किन्तु बौद्ध गुरु रथ निकालनेके पक्षमें नहीं थे। उनका कहना था कि कोई भी जैन विद्वान जबतक हमें शास्त्रार्थ द्वारा विजित नहीं कर देगा तबतक रथ नहीं निकाला जा-सकता। गुरुके विरुद्ध राजा कुछ नहीं कह सकते थे। बड़े धर्म-संकटका समय उपस्थित था। भ्रमण करते अकलंकको यह सब पता लगा। वे हिमशीतल राजाकी सभामें गए और बौद्ध गुरुसे शास्त्रार्थ करनेको कहा। दोनोंमें छह मास तक परदेके अन्दर शास्त्रार्थ होता रहा। अकलंकको इस शास्त्रार्थसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने इसका रहस्य जानना चाहा, उन्हें शीघ्र ही ज्ञात हो गया कि बौद्ध गुरुके स्थानपर परदेके अन्दर घड़ेमें बैठी बौद्धदेवी तारा वाद कर रही है। उन्होंने परदेको खोलकर घड़ेको भी फोड़ डाला। तारादेवी भाग गई और बौद्धगुरु पराजित हुआ। जैन रथ धूमधामसे निकाला गया और जैनधर्मका महत्व प्रकट हुआ।

श्री देवचंद्र कृत कन्नड ग्रंथ " राजावली-कथे " में अकलंक-चरित है जिसका सार राइस साहिबने निम्नप्रकार लिखा है—

जिस समय कांचीमें बौद्धोंने जैन धर्मकी प्रगतिको बिल्कुल रोक दिया था; उस समय जिनदास नामक जैन ब्राह्मणकी जिनमती पत्नीसे अकलंक और निकलंक पुत्र हुए । वहांपर उनके सम्प्रदायका कोई पढ़ानेवाला न होनेके कारण दोनोंने भगवद्दास नामक बौद्ध गुरुसे गुप्त रीतिसे अध्ययन प्रारम्भ किया । उन्होंने इतनी असाधारण गतिसे उन्नति की जिससे गुरुको संदेह होगया और उसने यह जाननेका निश्चय किया कि वे कौन हैं, एक रात्रिको जब वे सोते थे, बौद्ध गुरुने बुद्धका दांत उनकी छातीपर रख दिया इससे बालक ' जिन बुद्ध ' कहते हुए एकदम उठ खड़े हुए इससे गुरुको मालूम होगया कि ये जैन हैं, तब उनके मारनेका निश्चय किया गया । वे दोनों भाग निकले । अकलंक धोबीकी सहायतासे उसकी गठरीमें छिपकर बच गए और निकलंक मारे गए । अकलंकने दीक्षा लेकर सुधापुरके देशीयगणका आचार्य पद सुशोभित किया । अनेक मतोंके आचार्य, बौद्धोंसे वादविवादमें हारकर अकलंकदेवके पास आए । अकलंक देवने बौद्धोंपर विजय पानेका निश्चय किया और उन्हें वादमें हरा दिया । कांचीके बौद्धोंने हिमशीतलकी सभामें जैनियोंसे इस शर्तपर वादविवाद किया कि हारनेपर उस सम्प्रदायके सभी मनुष्य कोल्हूमें पिलवा दिए जायें, बौद्धोंने परदेकी ओटमें ताड़ीका मृत्कुंभ रक्खा उसमें तारादेवीका आह्वान कर अकलंकदेवके प्रश्नोंका उत्तर देनेको कहा । यह शास्त्रार्थ १७ दिन तक चला । अकलंकको कुष्मांडिनीदेवीने

स्वप्नमें दर्शन देकर कहा—तुम अपने प्रश्नोंको प्रकारान्तर करनेपर जीत जाओगे। अकलंकने ऐसा ही किया और वे विजयी हुए। राजा हिमशीतलको बौद्धोंके प्रपंचका पता लगा। उसने बौद्धोंको कोल्हूमें पिलवा देनेकी आज्ञा दी। परन्तु अकलंकदेवने ऐसा नहीं करने दिया। तब राजाने बौद्धोंको अपने देशसे निकाल दिया और वे समस्त बौद्ध सीलोनके नगर ' कैंडी ' में चले गए।

उपर्युक्त कथाओंसे यह निश्चित होता है कि अकलंकदेव एक दिग्विजयी विद्वान् और प्रभावशाली वक्ता थे। उन्होंने अपने प्रबल तर्कके बलसे जैनधर्मकी प्रतिष्ठाको स्थापित किया था। राष्ट्रकूटवंशी राजा साहसतुंगके राजदरबारमें उन्होंने सम्पूर्ण बौद्ध विद्वानोंको पराजित किया था। कांचीके पल्लववंशी राजा हिमशीतलकी राजसभामें उन्होंने अपूर्व विजय प्राप्त की थी और सर्वत्र भ्रमण कर जैनत्वके झंडेको फहराया था।

प्रचंड वादी होनेके अतिरिक्त वे न्याय और दर्शनशास्त्रके अपूर्व विद्वान थे। अपनी महान् विद्वत्ताके कारण वे भट्टाकलंकके नामसे प्रसिद्ध थे। विद्यानंदिजीने उन्हें ' सकल तार्किक-चक्र चूड़ामणि ' के नामसे स्मरण किया है।

ग्रंथ रचना—

अकलंकदेव जैन न्यायके व्यवस्थापक थे, और दर्शनशास्त्रके असाधारण पंडित थे। उनकी दार्शनिक कृतियोंके अभ्याससे उनके तलस्पर्शी पाण्डित्यका पद पदपर अनुभव होता है। उनमें स्वमत स्थापनके साथ परमतका अकाट्य युक्तियों द्वारा निरीक्षण किया गया

है। ग्रन्थोंकी शैली गूढ़ संक्षिप्त अर्थबहुल और सूत्रात्मक है। इसीसे हरिभद्रादि उत्तरवर्ती आचार्योंने अकलंक न्यायका सम्मानपूर्ण उल्लेख ही नहीं किया, किन्तु जिनदासगणी महत्तर जैसे विद्वानोंने भी उनके 'सिद्धिविनिश्चय' ग्रंथके देखनेकी प्रेरणा की है। इससे उनके ग्रंथोंकी महत्ताका स्पष्ट अभ्यास मिल जाता है। वर्तमानमें उनकी निम्न कृतियां उपलब्ध हैं:—

१—लघीयस्त्रय, २—न्याय-विनिश्चय, ३—सिद्धि विनिश्चय, ४—अष्टशती, ५—प्रमाण संग्रह स्वो० भाष्य सहित, ६—तत्त्वार्थ राजवार्तिक भाष्य और ७—स्वरूप सम्बोधन तथा अकलंक स्तोत्र।

अकलंकदेवकी इन रचनाओंमें दो तरहकी रचनाएं हैं—एक तो दूसरे विद्वानोंके ग्रंथोंपर लिखे गये टीका ग्रंथ और दूसरी मौलिक कृतियां। उक्त ग्रन्थोंमें अष्टशती और तत्त्वार्थ राजवार्तिक भाष्य नामके दो टीका-ग्रन्थोंको छोड़कर शेष सभी ग्रंथ उनकी मौलिक रचनाएं हैं जो अकलंकदेवके अपूर्व पांडित्यकी द्योतक हैं:—

लघीयस्त्रय—यह प्रमाण प्रवेश, नय प्रवेश और प्रवचन प्रवेश नामके तीन लघु प्रकरणोंका एक संग्रह है जिसकी पद्य संख्या ७८ है। मूल पद्योंके साथ उनका स्वोपज्ञ विवरण भी जिसमें पद्योंमें विहित सांकेतिक शब्दों अथवा मान्यताओंका स्पष्टीकरण किया गया है। उक्त तीनों प्रकरणोंमें विभाजित क्रमानुसार प्रमाण, नय, निक्षेप वगैरहके विषयका विशद विवेचन किया गया है। इसपर अभयचन्द्रसूरिकी एक वृत्ति भी है जो माणिकचंद ग्रंथमालामें प्रकाशित होचुकी है।

न्यायविनिश्चय—इस ग्रन्थका कलेवर तीन भागोंमें विभाजित

है—प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम। इन तीनों प्रकरणोंमें ४८१ कारिकाएं हैं। इनमेंसे प्रथम अधिकारमें प्रत्यक्षका लक्षण करते हुए बौद्धोंके इन्द्रिय प्रत्यक्ष, मानस प्रत्यक्ष, स्वसंवेदन प्रत्यक्ष और योगी प्रत्यक्षका, सांख्य तथा नैयायिकके प्रत्यक्षका निरसन करते हुए अन्तमें अतीन्द्रिय प्रत्यक्षके लक्षणके साथ प्रथम अधिकार समाप्त होजाता है।

द्वितीय अधिकारमें अनुमान, साध्य, साधन, हेत्वाभास, प्रतिज्ञा, तर्क, जाति और वादका विशद विवेचन किया है, साथ ही जीवादिके स्वरूपका विवेचन करते हुए चार्वाक आदिके मतकी आलोचना की गई है।

और तृतीय आगम नामके अधिकारमें आत्मा, मोक्ष, सर्वज्ञ, आदिका कथन करते हुए बौद्धोंके चार आर्य सत्यों आदिका उपहास करते हुए वेदोंके अपौरुषेयत्व और सांख्यके मोक्ष विषयक मन्तव्यकी समालोचना भी की गई है। इस ग्रन्थपर आचार्य वादिराजकी एक विस्तृत टीका भी प्राप्त है, जो ज्ञानपीठ बनारससे मुद्रित होरही है। यह टीका बड़ी ही महत्त्वपूर्ण है, इसी परसे मूल ग्रन्थका बड़ी कठिनतासे उद्धार किया गया है। इसपर अकलंकदेवकी स्वोपज्ञ वृत्ति भी रही है, किन्तु वह अभी तक प्राप्त नहीं हुई। इस तरह यह ग्रन्थ बड़ा ही दुर्बोध संक्षिप्त और गम्भीर है।

सिद्धिविनिश्चय—यह ग्रंथ मूलतः स्वतंत्र रूपसे उपलब्ध नहीं है किन्तु कच्छ देशके 'कोडाय' ग्रामके श्वेताम्बरीय ज्ञानभंडारसे सिद्धिविनिश्चयकी विशाल टीका उपलब्ध हुई है। यह टीका अकलंकदेवके गूढ पदोंका रहस्य प्रकट करनेवाली है। इस टीकाके कर्ता

आचार्य अनन्तवीर्य हैं, जो यशोभद्रके पादोपजीवी शिष्य थे। इस टीकामें भी मूल दिया हुआ नहीं है; अतः इसके मूल ग्रन्थका अभीतक पूरे तौरसे उद्धार नहीं होसका, किन्तु पं० महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्य बनारसने टीकापरसे सिद्धिविनिश्चयके मूलकी बहुत कुछ उपलब्धि करली है। इस ग्रन्थमें १२ प्रस्ताव हैं, जिनमें प्रत्यक्ष सिद्धि, सविकल्प सिद्धि, प्रमाणान्तर सिद्धि, जीवसिद्धि, जल्पसिद्धि, हेतुलक्षणसिद्धि, शास्त्रसिद्धि, सर्वज्ञसिद्धि, शब्दसिद्धि, अर्थनयसिद्धि, शब्दनयसिद्धि, और निक्षेपसिद्धि, इन बारह अधिकारों द्वारा वस्तुतत्त्वका विश्लेषण करते हुए स्वमतके स्थापनके साथ दर्शनान्तरीय मान्यताओंका अकाट्य युक्तियों द्वारा निरसन किया गया है। और अनेकान्त द्वारा वस्तुतत्त्व समर्थन किया गया है। आचार्य अकलंकदेवकी यह अन्यतम गूढ संक्षिप्त और सारूप दुर्बोध कृति है।

अष्ट शती—यह ग्रंथ स्वामि समन्तभद्रके देवागम या आप्तमीमांसा नामक प्रकरणकी अर्थबहुल, गंभीर और संक्षिप्त व्याख्या है। चूंकि टीकाका परीमाण आठसौ श्लोक जितना है इस कारण उसे अष्टशती कहते हैं। यह टीका ग्रंथ बहुत ही गहन है। यद्यपि इसपर आचार्य विद्यानन्दकी आठ हजार श्लोक परिमित 'अष्टसहस्री' नामकी एक महत्वपूर्ण व्याख्या अथवा टीका है। जिससे उक्त टीकागत सभी प्रमेयोंका विस्तृत परिज्ञान होजाता है और उससे अकलंक देवकी सूक्ष्म तथा असाधारण प्रज्ञाका सहज ही आभास मिल जाता है। अष्टशतीका प्रत्येक वाक्य पूर्वापरके विचार-विमर्षके साथ उस तर्कशालिनी प्रतिभाके द्वारा प्रसूत हुआ है, जो दार्शनिक क्षेत्रमें अत्यंत गहन, संक्षिप्त, बहु

अर्थसूचक व्याख्या मानी जाती है। यदि आचार्य विद्यानंदने अष्टसहस्री नामकी विशाल एवं महत्वपूर्ण व्याख्या द्वारा अष्टशतीके प्रमेयोंका अथवा मन्तव्योंका बोध कराया गया होता तो विद्वानगण उसके मन्तव्योंको ठीक तरहसे समझ सकते, इसमें बहुत कुछ सन्देह है।

प्रमाण संग्रह—इस ग्रंथमें भी ९ प्रस्ताव या अधिकार हैं जिनकी कुल पद्य संख्या ८७½ है। प्रस्तुत ग्रंथ गद्य पद्यात्मक है। इस पर स्वोपज्ञ विवृति भी उपलब्ध है। रचना बड़ी दुरूह और सूत्रात्मक है। ग्रंथका विषय भी बड़ा गहन है। प्रमेय बहुत होनेसे गंभीर अर्थको संक्षेपमें प्रकट करनेके कारण ग्रंथ दुरूह एवं जटिल होगया है। ग्रंथमें एकान्तवादके विरुद्ध यावत उपलब्ध सभी प्रमाणोंका संग्रह किया गया है। मूल ग्रंथके साथ निहित गद्य भागमें कहीं कहीं पर पद्यकी चर्चाको खोला गया है तथा अन्य आवश्यक विषयोंका इसी सूत्रात्मक शैलीसे विवेचन किया गया है।

तत्त्वार्थराजवार्तिक भाष्य—यह तत्त्वार्थकी समुपलब्ध टीकाओंमें अपने विषयकी एक ही टीका है। जहां इसके वार्तिक संक्षिप्त और सूत्रार्थात्मक और प्रमेय बहुल हैं वहां उनका भाष्य अत्यंत सरल है। ग्रंथकी विशेषता उसके प्रमेयोंका अध्ययन करनेसे भलीभांति होजाती है। वार्तिकोंमें आचार्य पूज्यपाद कृत तत्त्वार्थवृत्ति (सर्वार्थसिद्धि) की लाक्षणिक पंक्तियोंका समावेश इस चतुराईसे किया गया है कि वे पढ़ते समय जुदी मालूम नहीं होती, 'प्रत्युत वे उस ग्रन्थका आवश्यक अंग जान पड़ती है। यह टीका आचार्य उमास्वामीके तत्त्वार्थसूत्रका महाभाष्य है जिसे तत्त्वार्थभाष्य भी कहा जाता है।

इस ग्रंथमें अकलङ्क देवकी वह सरल एवं सरस धारा देखनेको मिलती है जिसका अन्यत्र उनके ग्रंथोंमें दर्शन नहीं होता। साथ ही उनकी आगमिक श्रद्धाका पद पद पर दर्शन होता है, परन्तु समग्रग्रंथमें अनेकांतका अनुपालन किया गया है और यथावसर दर्शनान्तरीय विषयोंकी चर्चा भी बड़ी खूबीके साथ की गई है। इससे अकलङ्कदेवकी असाधारण और तलस्पर्शिनी प्रज्ञाका पद पद पर अनुभव होता है।

स्वरूप सम्बोधन—इस ग्रंथमें २५ पद्य दिये हुए हैं उनमें अनेकान्त शैलीसे वस्तु तत्त्वका विवेचन किया गया है, परन्तु इस ग्रंथके कर्तृत्व सम्बन्धमें अभी विवाद है कि यह अकलंकदेव कर्तृक है अथवा महासेन नामके विद्वानकी कृति है। हो सकता है कि यह ग्रंथ अकलंकदेवकी कृति न होकर महासेनके द्वारा ही रचा हुआ हो; परन्तु इसके लिये अभी और अन्वेषण करनेकी आवश्यकता है।

अकलंक स्तोत्र—यह १६ पद्यात्मक स्तोत्र ग्रन्थ है, इसमें महादेव, शंकर, विष्णु, ब्रह्मा और बुद्ध नामवाले देवताओंके संबंधमें कहे जानेवाले मन्तव्योंकी आलोचना करते हुए वीतराग, निष्कलंक और विगतदोष परमात्माको ही उक्त नामोंसे पुकारते हुए स्तवन किया गया है।

इसतरह अकलंकदेवने अपने जीवनमें जैन धर्म और जैन साहित्यकी जो महान् सेवा की है वह अनुकरणीय है। अकलंकदेवकी ये महान् एवं असाधारण कृतियां उनके व्यक्तित्वको चिरंजीवी बनाए हुए हैं।